विशेष हिन्दी महाकाव्य संग्रह

— संकलनकर्त्ता —

श्री कृष्ण गोपाल बीजावत - अजमेर
श्री पुरुषोत्तम लाल तिवारी - उदयपुर

— संपादक —

डॉ. नवल किशोर भाभड़ा - अजमेर

(माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान के अधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित)

कॉलेज बुक हाउस
चौड़ा रास्ता, जयपुर

विशेष हिन्दी महाकाव्य संग्रह

(सीनियर सैकण्डरी कक्षा 12 के लिए विशेष हिन्दी विषय के द्वितीय प्रश्न पत्र की स्वीकृत पाठ्य पुस्तक)

-संकलनकर्ता-

श्री कृष्ण गोपाल बीजावत - अजमेर
श्री पुरुषोत्तम लाल तिवारी - उदयपुर

- सम्पादक -

डॉ. नवल किशोर भाभड़ा - अजमेर

1997

(माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान के अधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित)

कॉलेज बुक हाउस

चौड़ा रास्ता, जयपुर

❑ संस्करण 1997
❑ **मुद्रित प्रतियाँ :** 18000

❑ **मूल्य :** 4.30
चार रुपये तीस पैसे मात्र

❑ **लेवी :** 0.15
पन्द्रह पैसे मात्र

❑ **मुद्रक :** ग्राफिक ऑफसेट प्रिन्टर्स,
जौहरी बाजार, जयपुर ।

प्रयुक्त कागज / कार्डशीट का प्रमाणीकरण :

❑ कागज 58 gsm हिन्दुस्तान पेपर कॉरपोरेशन
❑ कार्डशीट130 gsm हिन्दुस्तान पेपर कॉरपोरेशन

विषय - सूची

भूमिका

हित्य :

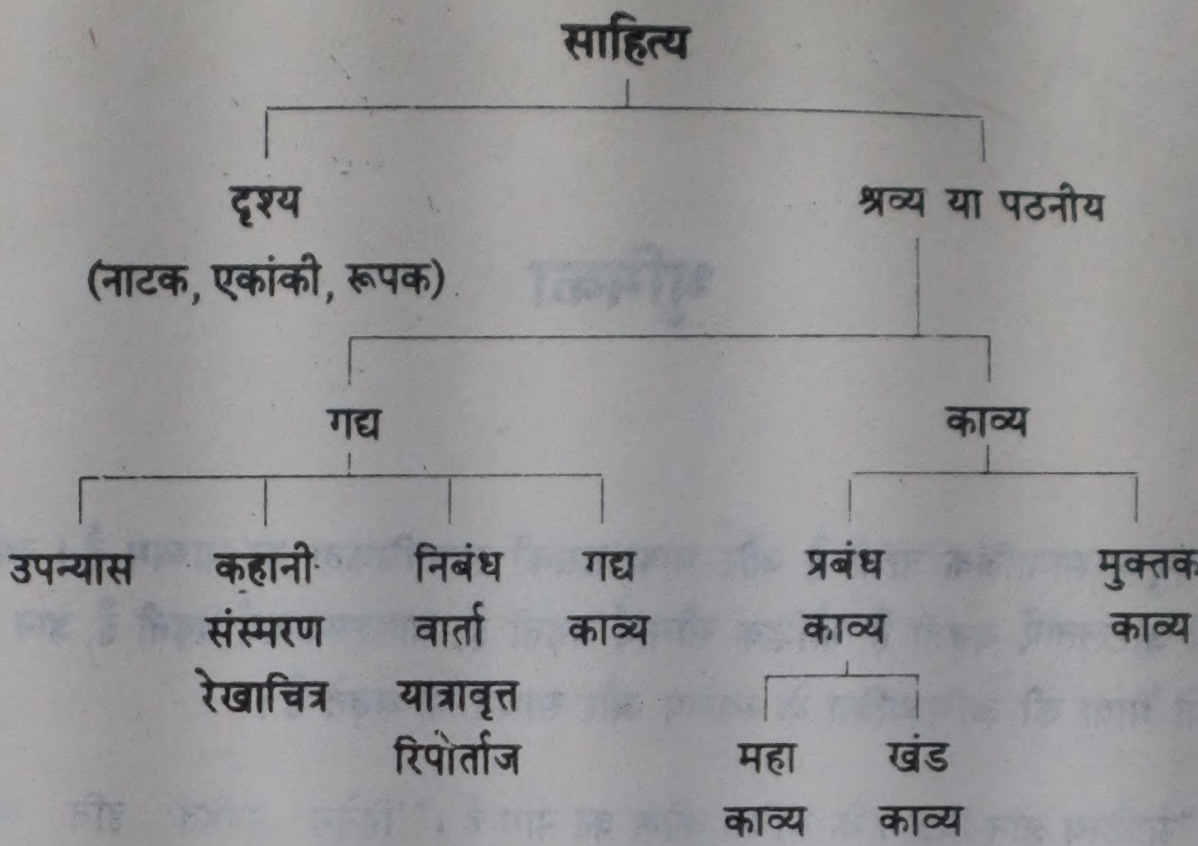
मनुष्य सामाजिक प्राणी है और भाषा उसकी सामाजिकता का माध्यम है। ज्यों-ज्यों वन की जटिलताएँ बढ़ती हैं, बौद्धिक सीमाएं बढ़ती हैं, आवश्यकताएँ बढ़ती हैं, ज्ञान बढ़ता त्यों-त्यों भाषा की अभिव्यक्ति के स्वरूप और साधन भी बढ़ते हैं।

"साहित्य ज्ञान-विज्ञान के संचित कोश का नाम है।" 'हितेन सहितं इति साहित्यम्' ी जो समाज के हितार्थ हो उसे साहित्य कहा जाता है। साहित्यकार अपने चारों तरफ जो भी देखता है, अनुभव करता है, उसे दूसरों के हितार्थ साहित्य में अभिव्यक्त करता है। में सबको साथ लेकर, सबके हित को ध्यान में रखकर, लोक-मंगल की इच्छा से अभिव्यक्ति ी है। उसमें "मानव जीवन की व्याख्या" की जाती है। इस तरह साहित्य जीवन की कमंगलपरक रचनात्मक अभिव्यक्ति है।

हित्य और काव्य :

साहित्य शब्द का अर्थ व्यापक है। उसके अन्तर्गत गद्य, पद्य और उनकी सभी विधाओं- न्यास, कहानी, निबंध, काव्य, संस्मरण, रेखाचित्र आदि की गणना होती है। "काव्य" शब्द ीन काल में "साहित्य" के अर्थ में प्रयुक्त होता था। उस समय उसमें गद्य, पद्य, नाटक, चम्पू, क आदि सभी रूपों की गणना होती थी। ध्यान में रखने लायक तथ्य यह है कि प्राचीन य में वेदों से लेकर अपभ्रंश काव्यों तक साहित्य पद्य प्रधान होता था, इसलिए "काव्य" नाम ही प्रचलन था।

अब साहित्य के दो पक्ष हो गए हैं और प्रत्येक पक्ष में अनेक रचना-रूप हो गए हैं, ा —



काव्य का स्वरूप :

काव्य-शास्त्र की विवेचना करने वाले **आचार्यों** ने अपने-अपने ढंग से काव्य के स्वरू की विवेचना की है। उनकी परिभाषाओं में एकरूपता नहीं मिलती। काव्य के स्वरूप के पक्ष होते हैं —

(1) भाव पक्ष या अनुभूति पक्ष यानी कविता का कथ्य, उसके भाव, विचार, संदे आदि।

(2) कला पक्ष या शिल्प पक्ष यानी कविता की भाषा, शैली, अलंकार, छंद, शब्द शा काव्य गुण, बिंब, प्रतीक आदि।

किसी ने भाव पक्ष को काव्य की आत्मा माना है तो किसी ने कला पक्ष को महत्त्वपू माना है, इसलिए काव्य के लक्षण या उसकी परिभाषा कई प्रकार से की गई है, यथा —

1. "शब्दार्थों सहितौ काव्यम्" (भामह) अर्थात् काव्य शब्द और अर्थ की संहि (सम्मेलन) का नाम है।

2. 'दंडी' ने इस परिभाषा में अलंकारों को अधिक महत्त्वपूर्ण माना क्योंकि काव्य क स्वरूप अलंकारों से ही रमणीय बनता है।

3. 'आचार्य वामन' ने—"रीतिरात्मा काव्यस्य" कह कर रीति को काव्य की आत माना है। रीति 'विशिष्ट पद रचना' या भाषा की रीति या शैली विशेष को क गया है।

4. इसके विपरीत 'आनन्दवर्धन' ने ध्वनि या मन्तव्य या आशय को काव्य की आत माना—"काव्यस्यात्मा ध्वनिः"

5. 'कुन्तक' ने काव्य को "वक्रोक्ति जीवितम्" माना अर्थात् वक्र उक्ति या विदग्धतापूर्ण कथन को काव्य की आत्मा या उसका मूल प्राण तत्त्व माना है।
6. 'आचार्य क्षेमेन्द्र' ने 'औचित्य' को काव्य की आत्मा के रूप में स्थापित किया है।
7. सब मतमतान्तरों का समन्वित समाधान करते हुए 'आचार्य विश्वनाथ' ने कहा— "वाक्यं रसात्मक काव्यम्"। अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है। रसात्मक का अर्थ है— ऐसी उक्ति वा रचना जिसमें किसी भाव को उसके आलम्बन-उद्दीपन के साथ इस तरह से उभारा गया हो कि वह श्रोता, पाठक या दर्शक के मन में वैसी ही भावना जाग्रत कर सके।

काव्य की यही परिभाषा भारतीय साहित्य में सर्वमान्य हुई। इस मान्यता को "रसवादी" मान्यता कहते हैं। अन्य मान्यताओं में "अलंकारवाद", "रीतिवाद", "ध्वनिवाद" और "वक्रोक्तिवाद" के नाम प्रचलित हैं। उन्हें भी समीक्षा में स्वीकार किया गया है।

वस्तुतः काव्य की विवेचना के जो दो पक्ष - भाव और कला पक्ष हैं, उनकी विवेचना में, उक्त सभी मान्यताओं के आधार पर कसौटियाँ बनाई गई हैं। एतद्नुसार—

1. **भाव पक्ष में** — भाव, आलम्बन, उद्दीपन, रस, ध्वनि आदि।
2. **कला पक्ष में** — रीति, अलंकार, छन्द, वक्रोक्ति आदि। औचित्य तो भाव और कला के सभी पक्षों में सहज सामंजस्य के रूप में अन्तर्निहित रहता है।

यूरोपियन मत में काव्य के चार पक्ष माने गए हैं —

(1) भाव तत्त्व (इमोशन) (2) बुद्धितत्त्व (इन्टेलेक्चुअल)

(3) कल्पना (इमेजिनेशन) (4) शैली तत्त्व (स्टाइल)

भारतीय और पाश्चात्य मान्यताओं में कोई बुनियादी अन्तर नहीं है क्योंकि बुद्धि, भाव में समाहित होती है और कल्पना, शैली में। इसी कारण भारतीय काव्य समीक्षा में दो ही पक्ष माने जाते हैं — (1) भाव पक्ष (2) कला पक्ष।

महाकाव्य का आशय :

काव्य के दो भेद माने गये हैं —

(1) प्रबन्ध काव्य (2) मुक्तक काव्य

प्रबंध काव्य वह है जिसमें विषयवस्तु सुगठित हो, परस्पर सम्बद्ध हो और आदि से लेकर अन्त तक उसका विकास किसी सुसम्बद्ध कथा में प्रबंधित किया जाए। जैसे, रामचरित-मानस, साकेत, कामायनी आदि।

मुक्तक काव्य में प्रत्येक छंद या पद्य रूप स्वतंत्र होता है और अपने प्रसंग और भाव में अन्य पद्य रूपों से प्रबंधित नहीं होता। जैसे — सूर सागर में, रहीम के दोहों में, कबीर ग्रंथावली में, बिहारी सतसई में या आजकल की स्वतः संपूर्ण कविताओं-गीतों में।

प्रबन्ध काव्य के पुनः दो भेद किए जाते हैं —

(1) महाकाव्य (2) खंडकाव्य

महाकाव्य और खंडकाव्य में अन्तर —

दोनों में वही अन्तर होता है जो एक उपन्यास और कहानी में होता है —

1. महाकाव्य जीवन के व्यापक बल्कि सम्पूर्ण विस्तार को अभिव्यक्त करता है, खंडकाव्य जीवन के किसी एक पक्ष की अभिव्यक्ति करता है। एक महाकाव्य की कथावस्तु पर कई खंडकाव्य बन सकते हैं, जैसे— मैथिलीशरण गुप्त ने "रामचरित-मानस" की कथावस्तु के सहारे "पंचवटी" खंडकाव्य रचा, किसीने "परशुराम" खंडकाव्य रचा। किसी महाकाव्योचित कथा के एक पक्ष को लेकर किसी भी खंड काव्य की रचना की जा सकती है।
2. महाकाव्य जैसे सम्पूर्ण होता है, वैसे ही खंडकाव्य भी कथा, विकास, परिणति आदि में पूर्ण होता है।
3. आकार की दृष्टि से महाकाव्य विशाल होता है, खंडकाव्य छोटा होता है। उसमें मुख्य कथा ही होती है, प्रासंगिक कथाएँ नहीं होतीं।
4. महाकाव्य की तरह खंडकाव्य भी किसी प्रसिद्ध कथानक पर आधारित होता है या प्रसिद्ध चरित्र पर केन्द्रित रहता है, किन्तु उसमें किसी एक पक्ष या विचार या भाव की ही प्रधानता होती है।
5. महाकाव्य में किसी उद्देश्य, मूल्य या संदेश की प्रधानता होती है, खंडकाव्य में वैसा जरूरी नहीं होता।
6. महाकाव्य का प्रबंधन सर्गों/काण्डों/अध्यायों में किया जाता है, खंडकाव्य में ऐसी सर्ग बद्धता आवश्यक नहीं है।

महाकाव्य का अर्थ :

डॉ. नवल भाभड़ा के अनुसार "महाकाव्य प्रबंध काव्य का वह रूप है जिसमें जीवन के समग्र एवम् सांगोपांग रूप का महान उदात्त रचनात्मक अंकन होता है"। इसकी कथा प्रायः किसी सांस्कृतिक या ऐतिहासिक स्मृति से जुड़ी होती है और समाज की समवेत संवेदना को युग-युग पर्यन्त प्रभावित करती है। कई बार वह समाज की भावनाओं से आदरणीय तथा पूजनीय बनकर एकात्म हो जाता है, जैसे— रामायण, कृष्णायन, महाभारत आदि।

महाकवियों की प्रतिभा का स्पर्श पाकर महाकाव्य समाज की संस्कृति, सामाजिक वैभव, नैतिक मान्यताओं और जीवन प्रणालियों का स्मारक भी बन जाता है जैसे— रामचरित-मानस, महाभारत।

महाकाव्य के उपादान :

महाकाव्य के प्रबन्धन में निम्नलिखित उपादान या घटक होते हैं—

(1) कथावस्तु (2) पात्र एवं चरित्र चित्रण

(3) वस्तु-वर्णन (4) भाव चित्रण या रसात्मकता

(5) भाषा शैली (6) महान उद्देश्य

1) कथावस्तु :

महाकाव्य की रचना का मुख्य आधार कथावस्तु होती है। यह कथावस्तु कहाँ से आती है ? वह पौराणिक आख्यानों से, लोककथाओं से, इतिहास कथाओं से, शास्त्रों से और कई बार किंवदंतियों से भी आती है। यदि कथावस्तु लोक विख्यात नहीं होगी तो महाकाव्य एक देशीय रह जाएगा, उसका साधारणीकरण नहीं होगा और रस बोध में बाधा पड़ेगी।

लोक विश्रुत का मतलब होता है— घटना, तथ्य, विचार, विश्वास, मान्यताओं आदि का सम्पूर्ण संघात जो कि लोक-विख्यात हो गया है। उदाहरण के लिए "महाभारत" की कथावस्तु का मतलब है— कुरूवंश की सारी घटनाएँ, भीष्म के चरित्र की महानता, कृष्ण की राजनीति युधिष्ठिर की धर्मबुद्धि, गौ-ब्राह्मण आदि की रक्षा, सत्य निष्ठा, अनीति का निराकरण, सत्य और धर्म की विजय आदि। कथावस्तु समस्त कथा-सूत्रों का सुसंबद्ध कलात्मक गठन है।

कथावस्तु में विविध तत्वों के सम्बन्धों का निर्वाह एक आवश्यक गुण होता है ताकि पाठक पर ऐसा प्रभाव पड़े कि वह उसके महत् संदेश को आत्मसात कर सके। घटनाओं में, विचारों में, परिणामों में क्रमबद्धता और सुसंगति नहीं होगी तो प्रबंधन की कुशलता पाठकों को प्रभावित नहीं करेगी। कार्य-कारण संबंध तथा नीति-अनीति, धर्म-अधर्म के बीच उचित सम्बन्ध निर्वाह और संस्कृति की मान्यता के अनुसार लोकमंगल का संदेश उभारना महाकाव्य का आवश्यक गुण होता है। 'रामायण' में, 'रामचरित मानस' में, 'महाभारत' में, 'कामायनी' में और 'प्रियप्रवास' आदि महाकाव्यों में हम यह गुण पाते हैं।

2) पात्र एवं चरित्र चित्रण :

महाकाव्य का नायक कोई पुराण प्रसिद्ध या इतिहास प्रसिद्ध ऐसा व्यक्ति होता है जो जातीय विशेषताओं, भावनाओं या आदर्शों का प्रतिनिधि बन सके। रामायण में राम, लक्ष्मण, भरत, विभीषण, सुग्रीव, नल-नील, रावण सब ऐसे नायक हैं जो भारतीय समाज के विशद स्वरूप का चित्रण करते हैं। उसी प्रकार सीता, मंदोदरी, सुलोचना, उर्मिला भी नारी समुदाय का प्रतिनिधित्व करती हैं।

पात्रों के गुण, दोष, व्यवहार, विचार आदि का प्रभावपूर्ण निरूपण चरित्र-चित्रण कहलाता है। घटनाओं के प्रसंग में, समस्याओं के प्रतिमुख होने पर, साहस-कार्य करने में, युद्ध, संधि, विग्रह आदि प्रसंगों में पात्रों के व्यवहार से उनके चरित्र की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय परम्परा में दुश्चरित्र, संत चरित्र, सज्जन चरित्र, और उदासीन चरित्र के प्रचुर उदाहरण महाकाव्यों में मिलते हैं। जितने सामाजिक संबंध हो सकते हैं और जितने विविध

पात्र समाज में होते हैं उन सबका निरूपण महाकाव्य में हो तो वह समाज का सहज सजीव प्रतिबिम्ब बनता है। उन सबके बीच महाकवि सामाजिक और आदर्शोन्मुख चरित्रांकन को उभारता है।

युग और समय की मांग या आकांक्षा के अनुरूप नायकों और चरित्र चित्रण को लेकर कविगण पृथक् महाकाव्य की रचना भी करते हैं। वे यह मान कर चलते हैं कि धर्म और आदर्श बुद्धि के आग्रह के कारण पुराने कवियों ने कुछ पात्रों के साथ समुचित न्याय नहीं किया है। उनके महत्त्व को उभारने की दृष्टि से पुराने महाकाव्यों के कुछ उपेक्षित पात्रों को लेकर अनेक चरित्र-प्रधान महाकाव्य भी रचे गए हैं। उदाहरण के लिये महाभारत के महारथी कर्ण को लेकर "अंगराज" महाकाव्य रचा गया है, द्रौपदी को लेकर "सैरंध्री", भीष्म को लेकर "कुरुक्षेत्र", रामायण की उर्मिला को लेकर "साकेत", रावण को लेकर "रावण"।

इसी प्रकार इतिहास प्रसिद्ध नायकों को लेकर नूरजहाँ, सिद्धार्थ, दैत्यवंश, पार्वती, मीरा एकलव्य, सेनापति कर्ण, सिद्धराज जैसे महाकाव्य रचे गए हैं।

(3) वस्तु वर्णन :

वस्तु वर्णन का अर्थ होता है— प्रकृति, वृक्ष, वनस्पति, सामाजिक स्थिति, विचार मान्यताओं, स्थान, मार्ग, तीर्थ आदि का यथावसर, यथाशक्ति वर्णन। यह महाकाव्य का आवश्यक उपादान होता है ताकि वातावरण की स्वाभाविकता बनी रहे, आलम्बन, उद्दीपन आदि उभरें और रसानुभूति संभव हो सके। वातावरण स्वाभाविक बने तो सुख, दु:ख, हर्ष, शोक, रोष, शांति आदि भावों के लिए कवि प्रसंगों की रचना कर सकता है। इसीलिए हम देखते है कि 'रामचरितमानस' में तुलसी ने धनुषयज्ञ के समय, गंगा पार करने के समय, पंचवटी निवास के समय, अगस्त्य आश्रम तथा ऋषि-मुनियों के सतसंग के समय यथावसर तदनुकूल वातावरण का चित्रण किया है। 'प्रियप्रवास' में प्रकृति, वृक्ष, वनस्पति, संध्या, गोधूलि आदि के वर्णन भी स्वाभाविक वातावरण का जीवंत रूप प्रस्तुत करते हैं।

(4) भाव चित्रण या रसात्पकता :

रस तत्त्व महाकाव्य का प्राण तत्त्व कहा जाता है। महाकाव्य में रस का अविरल उद्रेक और उन्मेष आवश्यक माना जाता है। आचार्यो ने शृंगार वीर और शांत रस को महाकाव्य में प्रधान रस के रूप में मान्यता दी है और करुण, रौद्र, बीभत्स, हास्य, वात्सल्य, भयानक, अद्‌भुत को उनके साथ प्रासंगिक रूप से उभारने को शास्त्र-सम्मत माना है। ऐसा इसलिए कि पाठक जीवन में व्याप्त, प्रेम, हास्य, उत्साह का तो नित्य आस्वादन करे और रोष, विस्मय, भय, जुगुप्सा आदि का प्रसंगानुसार अनुभव कर सके। सम्पूर्ण मानव जीवन की अभिव्यक्ति करना, उसकी विविधता को अनुभवगम्य बनाना महाकाव्य का अभिप्रेत होता है। जीवन की अधिक-से-अधिक समस्याएँ जिस महाकाव्य में उभरेंगी वह उतना ही विशद होगा और लोक में प्रतिष्ठित भी। इसीलिये महाकाव्य में मुख्य कथानक और पात्रों के साथ प्रासंगिक और अवांतर कथानकों घटनाओं, वर्णनों, संस्कृति के तत्त्वों आदि का प्रबंधन किया जाता है। ऐसे प्रबंधन के लिए छन्द योजना की विविधता, सर्गबद्धता आदि कौशल की अपेक्षा भी रहती है।

(5) भाषा शैली :

महाकाव्य विशद जीवन और संस्कृति की अभिव्यंजना करता है, अतः उसकी भाषा में भी महाकाव्योचित उदारता एवं लोकख्याति आवश्यक है। 'रामचरित-मानस', 'पद्मावत' जैसे महाकाव्य, अवधी भाषा में हैं, जो उस समय व्यापक अंचल में मथुरा के पूरब से लेकर बिहार के पश्चिम और छत्तीसगढ़ तक व्याप्त थी। 'प्रियप्रवास, कामायनी, साकेत, नूरजहाँ, अंगराज, कुरुक्षेत्र, हल्दीघाटी' आदि खड़ी बोली में हैं जो कि अखिल भारतीय सामाजिक संपर्क की भाषा है। वैसे ही गुजराती, बंगाली, तमिल, कन्नड़ आदि में अपने महाकाव्य हैं। संस्कृत की पुरातन भाषा में, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट भाषाओं में भी प्राचीन महाकाव्य हैं। पुरानी ब्रज या पिंगल में भी अनेक रासो ग्रंथ हैं जो कि महाकाव्य ही हैं, यथा 'पृथ्वीराज रासो' 'बीसल देव रासो' आदि।

शैली में प्रोक्ति रचना, अलंकार योजना, छन्द योजना, सर्ग-रचना, घटना क्रम का संयोजन, वातावरण रचना, भावानुकूल शब्द तथा वर्ण योजना का समावेश होता है। साहित्यिक मान्यताओं में इन्हें "रीति" कहा जाता है। रीति की अपनी मान्यताएँ हैं। उदाहरण के लिए, कठोर भावों, रोष आदि के लिए मूर्धन्य और संघर्षी ध्वनियों वाले शब्दों का प्रयोग एक रूढ़ि है, कोमल भावनाओं और प्रेम, वात्सल्य आदि के लिए प वर्ग, क वर्ग, त वर्ग जैसी कोमल ध्वनियों वाले शब्दों का प्रयोग हो। उसी प्रकार छन्दों के लिए भी छप्पय, कवित्त को रौद्र, भयानक रसों के लिए श्रेष्ठ माना जाता है, गीतिका, हरिगीतिका, सवैया को कोमल भावों के लिए। अत्युक्ति, अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों का उपयोग वीर, भयानक, अद्‌भुत रसों के लिए उत्कर्ष कारक होता है और उपमा, रूपक जैसे अलंकार शृंगार, हास्य आदि में अधिक प्रयुक्त होते हैं।

भाषा की प्रकृति भी शैली का एक अंग है। कथानक, विषय, पात्र, स्थान, वातावरण आदि की सुसंगति के लिए तदनुकूल भाषा रूपों का प्रयोग सुसंगत माना जाता है। प्राचीन कथानकों के लिए संस्कृत शब्द-प्रधान भाषा का प्रयोग किया जाता है।

(6) महान् उद्देश्य :

महाकाव्य की रचना किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती है। वह विशद जीवन की अभिव्यक्ति करता है और उसमें लोकमंगल की प्रेरणा विद्यमान रहती है। भारतीय मानक के अनुसार उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति का उद्देश्य रहना चाहिये। महाभारत, रामचरित-मानस, कामायनी, सिद्धार्थ जैसे महाकाव्य मोक्ष-लक्ष्यी हैं। असत्य पर सत्य की विजय, अनीति पर नीति की विजय, अधर्म पर धर्म की विजय, अन्याय पर न्याय की विजय, लोक-मंगल के आप्त सूत्र हैं और हर महाकाव्य इसी उद्देश्य को पूर्ण करता है।

अतः उपर्युक्त को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि "महाकाव्य ऐसी छन्दोबद्ध प्रबन्ध रचना होती है जिसमें विषय की व्यापकता और नायक की महानता के साथ कथावस्तु की एकसूत्रता, रस का प्रवाह, वर्णन की विशदता, जीवन का सर्वांगीण चित्रण और जातीय संस्कृति का निरूपण उपयुक्त भाषा और शैली में किया जाता है।"

भारतीय महाकाव्यों की परम्परा :

भारतीय साहित्य में महाकाव्यों की परम्परा मौखिक रूप में अनजाने समय से आख्यान या कथा के रूप में प्रचलित थी। "भारत" रूप में "महाभारत" ईसवी पूर्व की तीसरी-चौथी सदी में प्रचलित था। वैसे ही वाल्मीकि कृत "रामायण" गेय काव्य के रूप में बुद्ध के समय विद्यमान था।

संस्कृत साहित्य में, उसी मौखिक परम्परा की समृद्धि के कारण, अनेक महाकाव्य ईस्वी सन् से लेकर ईसा की सातवीं-आठवीं सदी तक रचे गए, यथा— रामायण, महाभारत, बुद्धचरित, सौदरनन्द, कुमारसंभव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीय चरित, रावणवध या भट्टिकाव्य, जानकी हरण आदि। प्राकृत साहित्य में भी वह परम्परा अक्षुण्ण रही। उनमें सेतुबंध, सिरी चिंधकत्व (श्री चिन्हकाव्य), गौड़वहो, उषानिरूद्ध जैसे प्रबंध काव्य प्राप्त हैं। अपभ्रंश साहित्य में भी वह परम्परा चलती रही। उसमें पउम चरिउ (पद्म चरित या रामायण) प्रसिद्ध महाकाव्य है। महापुराण (तिसट्ठि महापुरि गुणालंकार), भविस्सयत्त कथा (भविष्यत् कथा), णयकुमार चरिउ (नागकुमार चरित), जसहर चरिउ (यशोधर चरित), करवंड चरिउ (करंकडु चरित) जैसे चरित्र प्रधान और कथाप्रधान महाकाव्य भी उल्लेखनीय हैं।

महाकाव्यों की इस सुदीर्ध परम्परा ने हिन्दी महाकाव्यों को एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान की है। इसलिए वे आरंभ से ही उत्कृष्ट रचनाओं के रूप में उपलब्ध हैं।

हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यों का स्वरूप (10वीं से 16वीं सदी तक) रासो नामक या दोहाबंध नामक रहा था। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, परमार रासो (आल्हा ऊदल) जैसे रासो महाकाव्यों की परम्परा 18वीं सदी तक चलती रही। दूसरी ओर पद्मावत जैसे प्रेम और अध्यात्म-प्रधान प्रबंध काव्यों की परम्परा भी चली और तीसरी ओर वीर काव्य के नाम से चुनिंदा वीर राजाओं की जीवनी पर भी अनेक प्रबन्ध काव्य रचे गए।

हिन्दी में भारतेंदु युग (ईस्वी 1850) और उसके बाद महा-काव्यों की परम्परा कायम रही। साकेत, प्रियप्रवास, कामायनी, वैदेही वनवास, कृष्णायन, साकेत संत, नूरजहाँ सिद्धार्थ, अंगराज, रावण, जयभारत, दैत्यवंश, पार्वती, रश्मिरथी, मीरा, एकलव्य, तारकवध तो मान्य महाकाव्य हैं ही, कुछ ऐसे भी हैं जो नई रीति के प्रबंध काव्य हैं, यथा - हल्दीघाटी, श्रीकृष्णचरित मानस, आर्यावर्त, जौहर, कुरुक्षेत्र, महामानव, विक्रमादित्य, जननायक, देवार्चन, झाँसी की रानी आदि।

महाकाव्य के लक्षण :

भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार महाकाव्य के निम्नांकित लक्षण हैं —

(1) महाकाव्य किसी प्रसिद्ध कथानक, चरित्र या जीवन मूल्य पर केन्द्रित होता है। जैसे— रामचरित-मानस, महाभारत, साकेत, (उर्मिला पर केन्द्रित) कामायनी (मनु पर केन्द्रित), महारथी कर्ण, सिद्धार्थ, जयभारत, पार्वती, एकलव्य आदि।

(2) उसकी कथा सर्गों में निबद्ध होती है।

(3) उसके नायक में भारतीय आदर्शों के अनुरूप उच्च कुलोत्पन्नता, धैर्य, वीरता, सत्यनिष्ठा आदि गुण होते हैं।

(4) उसमें शृंगार, वीर और शांत रसों में से किसी एक की प्रधानता होती है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं।

(5) उसमें कथानक के उद्भव, विकास, प्रकरण भेद, उत्कर्ष और उपसंहार के तत्त्व विद्यमान होते हैं।

(6) उसका कथानक लोक प्रसिद्ध होता है ताकि पाठक की भावनाएँ उद्दीप्त हो सकें और वह रसानुभूति कर सके। अपनी संस्कृति और पुराणादि से जुड़े होने के कारण ही महाकाव्य प्रभावकारी होते हैं।

(7) उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कोई एक पुरुषार्थ लक्षित होता है।

(8) उसमें आरंभ में सांस्कृतिक मान्यता के अनुरूप नमस्कार, विनय, प्रार्थना, मंगलाचरण आदि की योजना होती है।

(9) उसमें दुष्टता की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा भी होती है, यद्यपि यह सर्वसामान्य लक्षण नहीं है।

(10) उसमें सर्गों की संख्या आठ से अधिक होती है। हर सर्ग का आकार नातिदीर्घ होता है। सर्ग में सामान्यतः एक ही छन्द या छन्द बंध का निर्वाह होता है, यद्यपि रस-भेद से छन्द-भेद लाया जा सकता है।

(11) प्रत्येक सर्ग अगले सर्ग की प्रस्तावना के साथ समाप्त होता है।

(12) उसमें अवसर पर आने पर प्रत्येक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्राकृतिक स्थिति— प्रातः, संध्या, दैनिक जीवन, सूर्य, चंद्र, तारे, प्रकाश, अंधकार, वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, नदी, यात्रा, संयोग, वियोग, सम्बन्ध, भाव, पाप-पुण्य, सत्कर्म-दुष्कर्म, तीर्थ, व्रत, उपवास, नगर, ग्राम, यज्ञ, पूजा, युद्ध, विवाह, मंत्रणा, संवाद-विवाद आदि का सांगोपांग वर्णन होता है।

(13) महाकाव्य का नामकरण सामान्यतः विषयवस्तु की प्रधानता के आधार पर किया जाता है।

□□□

महाकाव्यांश

1. रामचरित-मानस

गोस्वामी तुलसीदास (1540-1623) :

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म सन् 1540 के लगभग उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के राजापुर गाँव में हुआ था। तत्कालीन कवि और मुगल सेनापति अब्दुल रहीम खानखाना से उनके स्नेहिल सम्बन्ध थे। कवि तुलसी व्यक्ति रूप में, भक्त रूप में, मनीषीरूप में, सामाजिक अध्येता के रूप में, लोकद्रष्टा के रूप में अनुपम थे। उनकी प्रतिभा असाधारण और सर्वतोमुखी थी।

उनकी रचनाओं में "रामचरित मानस" अपने युग समाज के लिए भारतीय आदर्शों का आकर ग्रंथ माना जाता है। "विनयपत्रिका" उस समाज की अवस्था का दर्पण कही जाती है और "कवितावली". "गीतावली", "रामलला नहछू" आदि ग्रंथ लोकधारा के प्रतीक माने जाते हैं।

"रामचरित-मानस"

"रामचरित-मानस" युगजीवी महाकाव्य ही नहीं है बल्कि भारतीय सामाजिक आदर्शों, व्यवहारों, नीतियों, विश्वासों और जीवन दर्शन का जीवंत आलेख है। वह पिछले 450 वर्षों से भारतीय लोक जीवन की प्रेरणा का साधन बना हुआ है, बल्कि घर-घर में पूजनीय भी बना हुआ है।

उसका कथानक भारतीय संस्कृति के ऐतिहासिक प्रतीक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र दाशरथि की जीवन गाथा पर आधारित है। वह कथानक तुलसी से पहले भी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, बंगला आदि भाषाओं में काव्य का विषय बन चुका था। तुलसी ने उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को सन्निविष्ट करके लोक-मंगल का महान उद्देश्य फलित किया है।

चरित्रों में श्रीराम को आदर्श युगपुरुष, संस्कृति-संस्थापक, श्रेष्ठ चरित्र नायक और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। लक्ष्मण, भरत, हनुमान, सुग्रीव आदि को भ्रातृत्व, सेवक भाव और निष्ठावान पात्रों के रूप में उभारा गया है। वे सामाजिक संगठन और उसके सुचालन के लिए आवश्यक बन गए हैं। सीता, मंदोदरी, सुलोचना, अनुसूया, शबरी, अहिल्या आदि के रूप में नारी-जीवन के आदर्श और उसकी विडम्बनाएँ उभरी हैं तो रावण, कुंभकर्ण,

नाद, बाली आदि के रूप में समाज कंटकों द्वारा उत्पन्न की हुई समस्याएँ उभारी गई हैं। ानक का चारित्रिक परिप्रेक्ष्य विराट् और व्यापक हो गया है।

साथ ही भौगोलिक परिप्रेक्ष्य भी उत्तर में सरयू से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम् तक प्त है जिसके कारण अखिल भारतीय प्राकृतिक निरूपण, धार्मिक मतमतान्तर, संस्कृति के -विभेद, जीवन दर्शन की विविधता और विविधताओं के बीच एकता के तत्त्वों का दिग्दर्शन व हुआ है। सारे घात-प्रतिघातों के बीच धर्म और सत्य की विजय का उद्देश्य स्थापित किया है।

भाषा अवधी है जो कि लोक विख्यात रही है और विद्वानों से लेकर निरक्षरों तक के सुबोध है। ऐसे कई लोग आज भी हैं जो निरक्षर हैं, मगर उन्हें रामचरित मानस कंठस्थ

मानस के भावबोध और भाषा-शैली की विशेषता यही है कि जहाँ पंडित लोग उसके -विमर्श में गहराई तक जा सकते हैं वहीं साधारण लोग उसके रसबोध में निमग्न हो जाने ोई कठिनाई अनुभव नहीं करते।

छंद-रचना, चौपाई, दोहा बंध की है किन्तु अवसर और प्रसंग के अनुसार सोरठा सवैया तथा संस्कृत के अन्य छंदों का भी भावानुकूल प्रयोग हुआ है।

अंश :

प्रस्तुत अंश "मानस" के "धनुष यज्ञ" प्रसंग से उदधृत है। पूर्व कथानक यह है कि थ के दो पुत्र— राम और लक्ष्मण किशोर होने पर विशेष शस्त्र शिक्षा के लिए ऋषि ामित्र के आश्रम में जाते हैं। वहाँ रहते हुए वे यज्ञ-विनाशक दुष्ट जनों का नाश करते हैं। राजा जनक के यहाँ सीता-स्वयंवर की घोषणा होती है।

यह प्रसंग उसी स्वयंवर कथा का उत्तराद्र्ध है। उस स्वयंवर की विशेषता यह थी कि जनक के यहाँ सुरक्षित शिव धनुष को राजाओं के पुरुषार्थ की कसौटी बनाया गया था। यह थी कि जो व्यक्ति उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उसे उठा सकेगा; वही सीता का कर सकेगा। स्वयंवर में कोई भी राजा कृतकार्य नहीं हो सका, तब विश्वामित्र की आज्ञा ने वह पुरुषार्थ कर दिखाया किन्तु हुआ यह कि प्रत्यंचा चढ़ाने के बाद टंकार करते वह धनुष टूट गया।

एक तो वह धनुष शिवजी का था और उसके संरक्षक थे- शिवजी के परम शिष्य म। परशुराम अत्यन्त क्रोधी, और उग्र स्वभाव के थे। धनुष भंग की सूचना पाते ही वे -स्थल पर आते हैं और धनुष-भंजक से प्रतिरोध लेने की घोषणा करते हैं। लक्ष्मण स्वभाव के थे। उनके साथ परशुराम का वाद-प्रतिवाद होता है, जिसमें कवि ने वीरों ए धीरज, क्षमाशीलता, विनय गुणों की आवश्यकता का संदेश उभारा है। वाद-द के अत्यंत गंभीर होने पर रामचन्द्र हस्तक्षेप करते हैं अपनी धीर, वीर, गंभीर, र्ण वाणी से परशुराम का क्रोध शांत करते हैं। परशुराम उनकी महानता को प्रमाण और आशीर्वाद देकर तपस्या करने चले जाते हैं।

इस प्रसंग में धनुष-भंग की घटना में अद्भुत रस का उद्रेक है तो लक्ष्मण परशुराम संवाद में रौद्र रस के तत्त्व उभरते हैं। अंत में शांत रस में कथा का पर्यवसान होता है।

धनुष यज्ञ :

भूप सहस दस एकहि बारा । लगे उठावन टरइ न टारा ॥
डगइ न संभु सरासनु कैसे । कामी बचन सती मनु जैसे ॥
सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी ॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥
श्रीहत भए हारि हिय राजा। बैठे निज-निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥
दीप-दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥

दोहा – कुअंरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥ 1 ॥

कहहु काहि यहु लाभु न भावा । काहु न संकर चाप चढ़ावा ॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥
अब जनि कोउ भाखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊं। कुंअरि कुंआरि रहउ का करऊं॥
जौं जनतेऊं बिनु भट भुवि भाई। तौ पनु करि होतेऊं न हँसाई॥
जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहिं भए दुखारी॥
माखे लखनु कुटिल भइ भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौंहैं॥

दोहा – कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम-पद-कमल सिरु, बोले गिरा प्रमान ॥ 2 ॥

रघुबंसिन्ह महुं जहं कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल-मनि जानी॥
सुनहु भानुकुल-पंकज-भानू। कहउं सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउं मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अब आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

दोहा – तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु-पद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ॥ 3॥

लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हिय हरषु जनकु सकुचाने॥
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि-पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक-परितापा॥
सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा। हरषु बिषादु न कुछ उर आवा॥
ठाढ़ भए उठि सहज सुभाए। ठवनि जुबा मृगराजु लजाए॥

दोहा – उदित उदयगिरि-मंच पर, रघुबर-बाल-पतंग।
बिकसे संत-सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग॥ 4॥

नृपन्ह केरि आसा-निसि नासी। बचन नखत-अवली न प्रकासी॥
मानी महिप-कुमुद सकुचाने। कपटी भूप-उलूक लुकाने॥
भए बिसोक कोक-मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुरु-पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मांगा॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥
बंदि पितर सुर सुकृत संभारे। जौ कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तो सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुं रामु गनेस गोसाईं॥

दोहा – रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बस, बचन कहइ बिलखाइ ॥ 5 ॥

सखि सब कौतुकु देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुरु पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुंअर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥
कहं कुंभज कहं सिंधु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥
रबि-मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु तिभुवन तम भागा॥

दोहा – मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुं, बस कर अंकुस खर्ब॥ 6 ॥

काम कुसुम-धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
देबि तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी॥
सखी बचन सुनि भइ परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥
तब रामहिं बिलोकि वैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि-तेही॥
मनहीं-मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस-भवानी।
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥
गननायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हिउं तुअ सेवा॥
बार-बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप-गुरुता अति थोरी॥

दोहा – देखि-देखि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम-जल, पुलकावली सरीर ॥ 7 ॥

नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु-पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहं धनु कुलिसहुं चाहि कठोरा। कहं स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि केहि भांति धरौं उर धीरा। सिरैस सुमन कत बेधिअ हीरा॥
सकल सभा कै मति भइ भोरी। अब मोहिं संभु-चाप गति तोरी॥

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहिं निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सत सम जाहीं॥

दोहा - प्रभुहिं चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मंडल डोल॥ ८॥

गिरा अलिनि मुख-पंकज रोकी। प्रगट न लाज-निसाअवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना॥
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥
तन-मन-बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद-सरोज चितु राचा॥
तो भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहिं रघुबर कै दासी॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलई न कछु संदेहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेम पनु ठाना। कृपा निधान राम सबु जाना॥
सियहिं बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु ब्यालहिं जैसे॥

दोहा - लखन लखेउ रघुबंस मनि, ताकेउ हर कोदंड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चांपि ब्रह्मांड॥ 9॥

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥
चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥
संभु चाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार नहिं कोउ कड़हारू॥

दोहा - राम बिलोके लोग सब, चित्र-लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिसेषि॥ 10॥

देखि बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करइ का सुधा-तड़ागा॥
का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने॥

अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥
गुरुहिं प्रनामु मनहि-मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सबु ठाढ़े॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

छंद - भरे भुवन घोर कठोर रव, रबि-बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि, अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे, सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी, जयति बचन उचारहीं॥

सोरठा - संकर-चापु जहाजु, सागरु रघुबर-बाहुबल।
बूड़ सो सकल समाजु, चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस॥ 11॥

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम-बारि अवगाहु सुहावन॥
राम रूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि-पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला॥
रही भुवन भरि जय-जय बानी। धनुषभंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहं-तहं नर-नारी। भंजेउ राम संभु-धनु भारी॥

दोहा - बंदी मागध सूत गन, बिरुद बदहिं मति धीर।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय धन मनि चीर॥ 12॥

झांझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहं-तहं जुबतिन्ह मंगल गाए॥
सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुख सोचु बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुखहिं बरनिअ केहि भांती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

रामहिं लखनु बिलोकत कैसे। ससिहिं चकोर किसोरकु जैसे॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीता गमनु राम पहिं कीन्हा॥

दोहा - संग सखी सुन्दर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुषमा अंग अपार॥ 13॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसे। छबि गन मध्य महाछबि जैसे॥
कर-सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहि छाई॥
तन संकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुंअरि चित्र-अवरेखी॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर-माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥

सोरठा - रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥ 14॥

पुर अरु व्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥
नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटी। बार-बार कुसुमांजलि छूटी॥
जहं-तहं बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरदावलि उच्चरहीं॥
महि पाताल नाक जसु व्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥
करहिं आरती पुर नर-नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥
सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुं एक ठोरी॥
सखी कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥

दोहा - गौतम तिय गति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि।
मन बिहंसे रघुबंस मनि, प्रीति अलौकिक जानि॥ 15॥

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
उठि-उठि पहिरि सनाह अभागे। जहं-तहं गाल बजावन लागे॥
लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बांधहु नृप बालक दोऊ॥

तोरे धनुष चाड़ नहिं सरई। जीवत हमहिं कुंअरि को बरई॥
जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राज समाजहिं लाज लजानी॥
बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहिं संग सिधाई॥
सोइ सूरता कि अब कहुं पाई। असि बुधि तौ बिधि मुंह मसि लाई॥

दोहा – देखहु रामहिं नयन भरि, तजि इरिषा मदु कोहु।
लखन रोषु पावकु प्रबल, जानि सलभ जनि होहु॥ 16॥

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग-अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सुख संपदा चहै सिव-द्रोही॥
लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नर नाहा॥
कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखी लवाइ गई जहं रानी॥
राम्रु सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥
रानिन्ह सहित सोच बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥
भूप बचन सुनि इत-उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥

दोहा – अरून नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुं मत्त गजगन निरखि, सिंघ किसोरहि चोप॥ 17॥

खरभरु देखि बिकल पुर नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी॥
तेहि अवसर सुनि सिव-धनु भंगा। आयउ भृगुकुल-कमल-पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससि-बदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुं चितवत गनहुं रिसाते॥
वृषभ-कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेऊ माल मृगछाला॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे। धनु सर कर कुठारु कल कांधे॥

दोहा – सांत बेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु, आयउ जहं सब भूप॥ 18॥

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि-कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आयु खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥
आसिष दीन्ह सखी हरषानी। निज-समाज लै गई सयानी॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद-सरोज मेले दोउ भाई॥
रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद-मोचन॥

दोहा - बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, ब्यापेउ कोपु सरीर॥ 19॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ न त आजू। उलटउं महि जहं लहि तव राजू॥
अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब संवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥

दोहा - सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु।
हृदय न हरषु बिषादु कछु, बोले श्री रघुबीर॥ 20॥

नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसकाने। बोले परसुधरहिं अपमाने॥
बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुं न असि रिस कीन्ह गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥

दोहा – रे नृप बालक काल-बस, बोलत तोहि न संभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु, बिदित सकल संसार॥ 21 ॥

लखन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नयन के भोरे॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥
बालकु बोलि बधऊं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानेहिं मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा॥

दोहा – मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीस किसोर।
गर्भन्हके अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर॥ 22 ॥

बिहँसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महा भट मानी॥
पुनि-पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूंकि पहारू॥
इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना, मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउं रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पापु अपकीरति हारे। मारतहुं पाँ परिअ तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

दोहा – जो बिलोकि अनुचित कहेउं, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंस मनि, बोले गिरा गंभीर॥ 23 ॥

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल काल बस निज कुल घालकु॥
भानु बंस-राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥
काल-कवलु होइहि छन माहीं। कहउं पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥
लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनै पारा॥
अपने मुंह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भांति बहु बरनी॥

नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥

दोहा - सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रतापु॥ 24॥

तुम्ह तौ कालु हांक जनु लावा। बार-बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बध जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बांचा। अब यहु मरनिहार भा सांचा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल-दोष गुन गनहिं न साधू॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छोड़उं बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहि उरिन होतेउं श्रम थोरे॥

दोहा - गाधि सून कह हृदय हंसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खांड न ऊखमय, अजहुं न बूझ अबूझ॥ 25॥

कहेउ लखनु मुनि सीलू तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीके। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जी के॥
सो जनु हमरेहिं माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली। तुरत देउं मैं थैली खोली॥
सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। हाय-हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउं नृप द्रोही॥
मिले न कबहुं सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥

दोहा - लखन उतर आहुति सरिस, भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुल-भानु॥ 26॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना॥
जौं लरिका कुछ अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनिग्यानी॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥

गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूट मुख पयमुख नाहीं॥
सहंज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही॥

दोहा – लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चलहिं बिस्व प्रतिकूल॥ 27॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया, परिहरि कोपु करिअ अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥
थर-थर कांपहिं पुर नर-नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि-सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होइ बल हानी॥
बोले रामहिं देइ निहोरा। बचउं बिचारि बंधु लघु तोरा॥
मनु मलीन तनु सुंदर कैसे। बिष रस भरा कनक-घटु जैसे॥

दोहा – सुनि लछिमन बिहंसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम॥ 28॥

अति विनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहिं काना॥
बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोपु बधु बंधब गोसाई। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुं अनुज तब चितव अनैसे॥
एहि कै कंठ कुठारु न दीन्हा। तो मैं काह कोपु करि कीन्हा॥

दोहा – गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउं जिअत, बैरी भूप किसोर॥ 29॥

बहई न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृप घाती॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कस काऊ॥
आज दया दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्र बिहंसि सिरु नावा॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥

जौं पै कृपा जरिहिं मुनि गाता। क्रोध भए तनु राख बिधाता॥
देखु जनक हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
बिहँसे लखनु कहा मन माहीं। मूंदे आँखि कतहुं कोउ नाहीं॥

दोहा - परसुरामु तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोधु॥ 30॥

बंधु कहइ कटु संमत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छांड़ कहाउब रामा॥
छलु तजि करहि समरु सिव द्रोही। बंधु सहित न त मारउं तोंही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिर नाए॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुं सुधाइहुं ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि संका सब काहू। वक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥

दोहा - प्रभुहि सेवकहि समरु कस, तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोके कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु॥ 31॥

देखि कुठारु बान धनु धारी। भइ लरिकहिं रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभाय उतरु तेहि दीन्हा॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनिकी नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥
हमहिं तुम्हहिं सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहां चरन कहं माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
देव एकु गुनु धनुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

दोहा - बार-बार मुनि बिप्रबर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि, तहूं बंधु सम बाम॥ 32॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउं तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥

समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि बिप्र के भोरे॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुं जीति जगु ठाढ़ा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

दोहा – जौ हम निदरहिं बिप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भय बस नावहिं माथ॥ 33॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहिं पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पांवर आना॥
कहउं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के।
राम रमापति कर धनु लेहू। खेंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

दोहा – जाना राम प्रभाउ तब; पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेमु अमात॥ 34॥

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥
बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥
करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउं अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए बनहिं तप हेतू॥
अपभय कुटिल महीप डेराने। जहं-तहं कायर गवंहिं पराने॥

दोहा – देवन्ह दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारी सब, मिटी मोहमय सूल॥ 35॥

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ-जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कल कोकिल बयनी॥
सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुं निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदय चकोर कुमारी॥
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुं भाई। अब जो उचित सो कहिअ गोसांई॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा विवाहु चाप आधीना॥
टूटत ही धनु भयउ बिबाहु। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

शब्दार्थ आदि

भूप	=	राजा
सहस	=	सहस्र, हजार
सरासन	=	शर का आसन, धनुष, पिनाक
जोगु	=	योग्य
हारी	=	हारकर
श्रीहत	=	अपमानित
दीप-दीप	=	स्थान-स्थान
पनु	=	प्रण
पावनिहार	=	पानेवाला
दमनीय	=	दमन करने वाला (1)
रहउ चढ़ाउब	=	चढ़ाना तो दूर रहा !
भाखे	=	कहे या कहलाए
परिहरऊं	=	त्याग दूं
का करऊं	=	क्या कर सकता हूँ
जनतेउं	=	जानता
जानकिहिं	=	जानकी को
रिसौंहै	=	क्रोध भरे
सुभाउ	=	स्वभाववश, आदत के अनुसार
कंदुक इव	=	गेंद के समान

मूलकजिमि	=	मूली की तरह
मेरु	=	सुमेरु पर्वत
जोजन	=	योजन, लगभग एक कोस की दूरी
छत्रक दंड	=	कुकुरमुत्ते की छतरी
भाथ	=	तरकस
दिग्गज	=	दिक्पाल, चारों दिशाओं के स्वामी, कल्पित गज।
सयनहिं	=	संकेत से
ठवनि	=	उठने का ढंग
केरि	=	की
सन	=	से
मृनाल	=	कमल नाल (5)
कौतुक	=	तमाशा
हितू	=	मित्र, हितेच्छु
बुझाइ	=	समझा कर
असि हठ	=	ऐसा हठ
सयानप	=	सयानापन, बुद्धि
कुंभज	=	अगस्त्य ऋषि
खर्व	=	नष्ट करना (6)
संसउ	=	संशय, शंका
भइ परतीती	=	प्रतीति हुई, भरोसा बंधा
बिनवती	=	मनौती मनाती है
तुव	=	तेरी
गुरुता	=	भारीपन (7)
कुलिस हु	=	वज्र से भी अधिक
सिरस सुमन	=	सेमर का फूल
कत	=	कैसे, कब
हरुअ	=	हलका
लव निमेष	=	एक एक पल और पलांश (8)
अलिनि	=	जीभ
चांपि	=	दबाकर
दिसि कुंजर	=	दिग्पाल जो कि दिशाओं को दबाकर रखने वाले माने गये हैं ताकि धरती डोल न सके।

कमठ	=	कच्छप अवतार जिसकी पीठ पर पृथ्वी के टिके होने की कल्पना है।
अहि	=	शेष नाग जिसके हजार फनों पर पृथ्वी के टिके होने की कल्पना है।
कोल	=	वराह जिसके दाँतों पर पृथ्वी के टिके होने की कल्पना है
सब कर	=	सबका
भृगुपति	=	परशुराम, भृगुवंशी
गरुआई	=	भारीपन
कदराई	=	भय, कायरता, कातरता
दुखदावा	=	दुखरूपी ताप
बोहितु	=	नाव, जहाज
कड़हारु	=	केवट, खेनेवाला (10)
बिहात	=	व्यतीत होता है
सुधा तड़ागा	=	अमृत का तालाब
बिसेषी	=	विशेष
रव	=	घोष, आवाज
कर कान दीन्हे	=	कानों पर हाथ रख लिए
उचारहिं	=	उच्चारण करते हैं, बोलते हैं
बूड़	=	डूब गया है (11)
कौसिक	=	विश्वामित्र
राकेसु	=	चन्द्रमा
बीचि	=	लहरें
देवबधू	=	अप्सराएँ
रसाला	=	मधुर
बंदी, मागध सूत	=	ऐसे लोग जो अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा और स्तुति गाते थे
बदहिं	=	गाते हैं
चीर	=	वस्त्र
बाजने	=	वाद्य, बाजे
पैरत थके	=	तैरते हुए जो थक गया हो (उसे)
बरनिह	=	वर्णन करें।

जलु स्वाती	=	स्वाति नक्षत्र में बरसता पानी जो चातक की प्यास बुझाता है
पहिं	=	की ओर, पास
गवनी	=	गमन, गति, चाल (13)
छविगन —जैसे	=	सुन्दरताओं के बीच जैसे महासुन्दरता हो
लखि परइ	=	दिखाई देता है।
चित्र अवरेखी	=	चित्र लिखित, स्तब्ध, चकित (14)
विबुध बधुटीं	=	देवनारी, अप्सराएँ
बिरदावली	=	विरुद, यशोगान, स्तुति
नाक	=	स्वर्ग लोक
ठोरी	=	ठौर, स्थान
सुरति	=	स्मरण (15)
मन माखे	=	मन के मलिन, दुष्ट बुद्धि
सनाह	=	कवच
गाल बजावन लागे	=	डींग मारने लगे
चाड़ सरई	=	इच्छा पूरी होना
सिधाई	=	चली गई
मुँह मसि लाई	=	मुँह पर कालिख पोतने वाली है।
कोहु	=	क्रोध
सलभ	=	शलभ, पतंगा जो कि आग में कूद कर जल मरता है (16)
बैनतेय	=	बिनता के पुत्र, गरुड़
ससु	=	खरगोश
नाग-अरि	=	हाथी के शत्रु अर्थात सिंह
अकारन कोही	=	अकारण क्रोध करने वाला क्रोधी
लहई	=	प्राप्त करे
नरनाहा	=	हे राजा जन !
सकानी	=	सकपका गई, शंकित हो उठी
लवाई गई	=	ले गई
चोप	=	उत्साह (17)
खरभरु	=	खलबली
भृगुकुल कमल पतंग	=	भृगुवंश रूपी कमल के सूर्य अर्थात परशुराम
लवा लुकाने	=	छोटे पक्षी छिप जाते हैं।

वृष कंध	=	बैल की तरह चौड़े और पुष्ट कंधे
तून	=	तरकस
कुठारु	=	परशु, फरसा
धनुसर	=	धनुष और बाण (18)
मार मद मोचन	=	कामदेव की सुन्दरता को भी लज्जित करने वाला
भीर	=	भीड़भाड़
जानि अजान जिमि	=	जानते हुए भी अनजान बन कर (19)
अनत	=	अन्यत्र
जहं लहि तव राजू	=	जहाँ तक तेरा राज्य है (20)
अपमाने	=	अपमानजनक
तोहिं न संभार	=	तुझे सुधबुध नहीं है (21)
नयन के भोरे	=	नये के भरोसे
जूंन	=	पुराना
महिदेवन्ह	=	ब्राह्मणों को
अर्भक	=	पिंड, बालक
सुराई	=	वीरता
निज कुल घालक	=	अपने वंश का नाश करने वाला
काल कवलु	=	मृत्यु का ग्रास
खोरि	=	दोष
हटकहु	=	मना करो
तुम्हहिं अछत	=	तुम्हारे स्वयं के होते हुए
त	=	तो
जनि	=	नहीं, मत
जनावहिं	=	बताते हैं (24)
काल हांक जनु लावा	=	मानो मृत्यु से हाँक कर यहाँ लाए गए हो
परसु सुधारी	=	फरसा संभाल कर
मैं बाँचा	=	अब तक मैंने बचाया
सील तुम्हारे	=	तुम्हारी मर्यादा का विचार करके
गुरु द्रोही	=	शिवजी का अपराधी
हरिअरइ सूझ	=	हरा ही हरा सूझ रहा है, पूरी स्थिति का ज्ञान नहीं है।
अयमय खांड	=	लोहे का खड्ग (25)

उरिन भए नीके	=	अच्छे उऋण हुए हो। परशुराम ने पिता के कहने से अपनी माता का सिर काटा था, इस ओर व्यंग्य है।
घरहि के बाढ़े	=	घर में ही शेर बने रहे हो !
कृसानु	=	अग्नि, लपट (26)
अचगरि	=	उपद्रव, दुष्टता
जुड़ाने	=	ठंडे पड़े, शांत हुए
कालकूट	=	विष, जहर
अनुहरइ न तोहि	=	तेरे समान नहीं है (27)
गुनी	=	कारीगर
मष्ट	=	मसखरी, व्यंग्य
कनक घट	=	स्वर्ण पात्र
बानी बाम	=	उलटे वचन, कटु वचन (28)
जुग पानी	=	दोनों हाथ
करिअ नहिं काना	=	कान न दें, ध्यान न दें
बर्रे	=	बर्रे जिसका स्वभाव ही कटु होता है
चितव अनैसे	=	अनखाया हुआ कुटिल दृष्टि से देख रहा है
रवनि.	=	रमणियों के
गर्भ स्रवहिं	=	गर्भ गिर जाते हैं (29)
बहइ न हाथ दहइ रिस छाती	=	हाथ में परशु होते हुए भी चला नहीं पा रहा इसलिये मन में क्रोध की आग धधक रही है
आजु दया दुःख दुसह सहावा	=	दया का असह्य दुख सहना पड़ रहा है !
बाउ	=	हवा, वायु
तनु राख विधाता	=	विधाता ही आपके शरीर की रक्षा करेगा
गेहू	=	घर
मूंदे आंखि कतहुं कोउ नाहीं	=	स्वतः आँखें बंद कर लीज़िए तो कहीं कोई नहीं दिखेगा
प्रबोधु	=	उपदेश (30)
संमत	=	सम्पति से, सहमति पर
कहाउब	=	कहलाना
सुधाइहुं ते	=	सीधेपन से, सरलपन से
वेष	=	वेशभूषा वीरों जैसी (31)
भइ लरिकहि रिस	=	बालक लक्ष्मण को क्रोध आया।

न चीन्हा	=	पहचाना नहीं
औतेहु	=	आते
घनेरी	=	अधिक घनी
सरिबरि	=	बराबरी
नव गुन	=	शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता ये नौ गुण तपस्वी या मुनि के हैं।
सरुष हँसि	=	क्रोध में ही हँस कर (32)
निपट	=	निरा, केवल
समर जग्य	=	रण यज्ञ
बोलसि निदरि विप्र के भौरे	=	ब्राह्मण के धोखे में निरादर भरी वाणी बोल रहा है
दापु	=	दर्प, घमंड
अहमिति	=	अहंकार कर रहा है (33)
पचारै	=	प्रचारे, चुनौती दे
सुखेन	=	सुखपूर्वक
काल किन होऊ	=	चाहे काल स्वयं क्यों न हो
सकाना	=	शंका में पड़ गया, डर गया
पांवर	=	पामर, नीच
कर धनु लेहू	=	अपने हाथ में यह (शाङ्‌र्ग धनुष जो परशुराम के पास था) धनुष लो
बिसमय	=	विस्मय
अमात	=	समाता है
वनज वन	=	कमल वन
वचन रचना अति नागर	=	वाणी रचना में कुशल
अग्याता	=	अनजाने में
अपभय	=	स्वयं रचित भय से, व्यर्थ ही भय कर
भवंहि पराने	=	प्रयाण कर गए, भाग गए (35)
जूथ-जूथ	=	समूहों में
जन्म दरिद्र	=	जन्म से दरिद्र
विगत त्रास	=	संकट या आशंका टल जाने पर
कृतकृत्य	=	सफल काम, काम में सफल।

प्रश्न एवं अभ्यास

1. "श्रीहत भये हारि हिय राजा" — राजाओं के श्रीहत होने का क्या कारण था ?
   (क) जनक ने उन्हें कटु वचन कहे थे।
   (ख) वे शिव धनुष नहीं उठा सके थे।
   (ग) परशुरामजी वहां आ गए थे।
   (घ) वे सीता का वरण नहीं कर पाए थे।
   (ङ) किशोर राम ने शिव धनुष का भंजन कर दिया था। (

2. "माखे लखन कुटिल भइ भौंहैं" — लक्ष्मण किस बात पर क्रोधित हो उठे थे ?
   (क) राजाओं द्वारा धनुष न तोड़ पाने पर।
   (ख) परशुरामजी की उग्र वाणी पर।
   (ग) जनक द्वारा क्षत्रिय विहीनता के आरोप पर।
   (घ) शिव धनुष की गुरुता पर।
   (ङ) स्वयं को धनुष उठाने का अवसर न मिलने पर। (

3. "राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥" — इस उक्ति में रा का कौनसा मनोभाव व्यक्त हुआ है ?
   (क) दृढ़ता (ख) भीरुता
   (ग) विनम्रता (घ) लघुता
   (ङ) धीरता (

4. "सांत वेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
   धरि मुनि तनु जनु, बीर रसु आयहु जहं सब भूप" — इस दोहे में किस अलंकार क प्रयोग हुआ है ?
   (क) उपमा (ख) रूपक
   (ग) श्लेष (घ) उत्प्रेक्षा
   (ङ) यमक (

5. "सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरषु जनक सकुचाने॥" — सीता के प्रसन्न होने, राजाओं के भयभीत होने और जनक के संकोच में पड़ने का कारण बताइए।

6. निम्नलिखित में प्रयुक्त छन्द तथा अलंकार की व्याख्या कीजिए —
   "उदित उदय गिरि मंच पर, रघुबर बाल-पतंग।
   बिकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन भृङ्ग॥"

7. निम्नलिखित के कला पक्ष (भाषा, छंद, अलंकार, अभिव्यंजना) की व्याख्या कीजिए —
"संकर चाप जहाजु, सागर रघुबर बाहुबल।
बूड़ सो सकल समाजु, चढ़ा जो प्रथमहि मोहबस ॥"

8. शिव धनुष के टूटने पर विभिन्न जनों पर जिन प्रभावों का चित्रण तुलसी ने किया है उन्हें अपने शब्दों में लगभग एक पृष्ठ में लिखिए।

9. "सखियाँ सीता से कहती हैं कि राम के चरण स्पर्श करो। सीता भयभीत और शंकित है। वह वैसा नहीं करती।" — इस आशय की चौपाई खोज कर बताइए। (2) उसका पूर्व प्रसंग क्या है ? (3) सखियाँ सीता से ऐसा क्यों कहती हैं ? (4) उनका कथन आज के संदर्भों में आपको कैसा लगता है ? (5) चरण स्पर्श न करने में सीता की कौन सी भावना कार्यशील रही होगी ? (6) उसके भयभीत होने का क्या कारण समझ में आता है ?

10. राम के बारम्बार विनय करने पर भी परशुरामजी का क्रोध शांत नहीं हो रहा था। ऐसी परिस्थिति में सीता के मन में क्या-क्या भाव उठ रहे होंगे ? — कल्पना के आधार पर लगभग पचास शब्दों में लिखिए।

11. राम के समझाने पर भी लक्ष्मण बार-बार परशुराम जी पर व्यंग्य कर रहे थे। ऐसे में जनकपुर के लोग मन में क्या सोच रहे होंगे ? कल्पना करके लगभग पचास शब्दों में लिखिए।

12. "देत चाप आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥" — इस कथन का पूर्व प्रसंग बताकर प्रसंगाधीन चाप और परशुराम के विस्मय का कारण बताइए। इस घटना के बाद क्या घटित हुआ होगा ?

2. प्रिय प्रवास

अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" का जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद क स्थान में सन् 1865 में हुआ था। निधन 1941 में। खड़ी बोली हिन्दी को काव्य ा के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में उनका आदरणीय स्थान है, अपूर्व ऐतिहासिक व है।

प्रारम्भ में उन्होंने नाटक और उपन्यासों की रचना की थी। "प्रद्युम्न विजय", "रुक्मणी जय", "प्रेमकांता", "ठेट हिन्दी के ठाट", "आधा खिला फूल" उनकी वैसी रचनाएं थीं।

तदनन्तर हिन्दी के प्रथम महाकवि और प्रथम महाकाव्यकार के रूप में वे प्रतिष्ठित हुए। क छोटी-बड़ी कविताओं के अलावा "प्रिय प्रवास" (1914) इनका महाकाव्य है। प्रिय प्रवास क भाषा जहां संस्कृत के तत्सम प्रधान शब्दों में और प्राचीन छन्दों में गुंथी हुई है, वहां "चोखे-चौपदे" में हिन्दी मुहावरों और लोकभाषा की लचक दिखाई देती है।

"प्रिय प्रवास" (1914) शृंगार रस प्रधान महाकाव्य है जिसमें कृष्ण के वियोग से जनि ब्रजवासियों की विरह वेदना व्यक्त हुई है। ऐसे काव्य को विप्रलम्भ शृंगार का काव्य कहत हैं। इसमें हरिऔधजी ने कृष्ण कथा को बौद्धिक धरातल पर अभिव्यक्ति दी है। उनक अलौकिकता को ग्राम सेवा, लोक सेवा, लोकानुरंजन और देश प्रेम का बाना पहनाकर कृष्ण वे चरित्र को एक कर्मठ समाज सेवक, नयोपदेशक, उत्प्रेरक व्यक्तित्व प्रदान किया है।

इसका कथानक उस प्रकार से सुसम्बद्ध, विकासमान और संधिबद्ध नहीं है जैसा वि रामचरित मानस में है, मगर कृष्ण के जीवन-चरित्र की घटनाओं को इसमें ब्रजवासियों क लीला- स्मृति के रूप में निबद्ध किया गया है।

प्रस्तुत अंश में "गोवर्धनधारण" की घटना वर्णित है। प्रलयंकारी वर्षा का विस्तृत वर्णन प्रकृति चित्रण के रूप में आया है। ब्रजवासियों की चिंता, आकुलता और मराश्रयता के चित्रण के बाद कवि ने कृष्ण द्वारा उनका उद्‌बोधन कराया है। कर्मठता, पुरुषार्थ और स्वावलम्बन क प्रेरणा के साथ सारे गोकुल को गोवर्धन पर्वत के पठार पर स्थानान्तरित करने में उनके योगदान का वर्णन करके कृष्ण को कर्मवीर के रूप में कवि ने उभारा है।

इतनी व्यस्तता और हर व्यक्ति, हर परिवार की तत्काल सहायता का उनका ऐसा गतिमान चित्रण किया गया है कि कहावत बन गई कि कृष्ण ने गोवर्धन को उंगली पर उठा लिया था।

भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रधानता है। ऐसी भाषा को तत्सम शब्द प्रधान कहते हैं। ऐसी भाषा का प्रारम्भिक रूप इस काव्य में सुरक्षित है, जिसमें समास चिह्नों की भरमा है। "अति-प्रकोप" "बहु-भयावह-गाढ़-मसी-समा", "अति-प्रचंड-प्रभंजन-वेग" जैसी शब्दावली इसमें है, जिसे अब इस प्रकार से नहीं लिखते। द्रुत विलंबित छंद का प्रयोग भी संस्कृत शैली पर है। प्राचीन पौराणिक प्रसंगों का नवीन मौलिक पुनराख्यान, संस्कृत के वार्णिक छंदों का हिन्दी में सवर्था नवीन प्रयोग, संस्कृत-निष्ठ, सामासिक शब्दावली से युक्त खड़ी बोली के काव्य में पहली बार प्रयोग की दृष्टि से इस काव्यांश का हिन्दी में अभूतपूर्व ऐतिहासिक स्थान है।

गोवर्धन-धारण :

दिवस एक प्रभंजन का हुआ।
अति-प्रकोप, घटा नभ में घिरी।

बहु-भयावह-गाढ़-मसी-समा।
सकल-लोक प्रकंपित-कारिणी ॥ 1 ॥

अशनि-पात-समान दिगन्त में।
तब महा-रव था बहु व्यापता।
कर विदारण वायु प्रवाह का।
दमकती नभ में जब दामिनी ॥ 2 ॥

मथित चालित ताड़ित हो महा।
अति-प्रचंड-प्रभंजन-वेग से।
जलद थे दल के दल आ रहे।
घुमड़ते घिरते ब्रज-घेरते ॥ 3 ॥

तरल-तोयधि-तुंग-तरंग-से।
निबिड़-नीरद थे घिर घूमते।
प्रबल हो जिनकी बढ़ती रही।
असितता-घनता-रवकारिता ॥ 4 ॥

उपजती उस काल प्रतीति थी।
प्रलय के घन आ ब्रज में घिरे।
गगन-मण्डल में अथवा जमे।
सजल कज्जल के गिरि कोटिशः ॥ 5 ॥

पतित थी ब्रज-भू पर हो रही।
प्रति घटी उर-दारक-दामिनी।
असह थी इतनी गुरु-गर्जना।
सह न था सकता पवि-कर्ण भी ॥ 6 ॥

तिमिर की वह थी प्रभुता बढ़ी।
सब तमोमय था दृग देखता।
चमकता वर-वासर था बना।
असितता-खनि-भाद्र-कुहू-निशा ॥ 7 ॥

प्रथम बूँद पड़ी ध्वनि-बोंध के।
फिर लगा पड़ने जल वेग से।

प्रलय-कालिक-सर्व-समां दिखा।
बरसता जल मूसल-धार था॥ 8॥

जलद-नाद प्रभंजन-गर्जना।
विकट-शब्द महा-जलपात का।
कर प्रकम्पित पीवर-प्राण को।
भर गया ब्रज-भूतल मध्य था॥ 9॥

स-बल भग्न हुई गुरु-डालियाँ।
पतित हो करती बहु-शब्द थीं।
पतन हो कर पादप-पुंज को।
क्षण-प्रभा करती शत-खंड थी॥ 10॥

सदन थे सब खंडित हो रहे।
परम-संकट में जन-प्राण था।
स-बल बिज्जु प्रकोप-प्रमाद से।
बहु-विचूर्णित पर्वत-शृंग थे॥ 11॥

दिवस बीत गया रजनी हुई।
फिर हुआ दिन किन्तु न अल्प भी,
कम हुई तम-तोम-प्रगाढ़ता।
न जलपात रुका, न हवा थमी॥ 12॥

सब-जलाशय थे जल से भरे।
इस लिये निशि-वासर मध्य ही।
जल-मयी ब्रज की वसुधा बनी।
सलिल-मग्न हुए पुर-ग्राम भी॥ 13॥

सर-बने बहु विस्तृत-ताल से।
बन गया सर था लघु-गर्त्त भी।
बहु तरंग-मयी गुरु-नादिनी।
जलधि तुल्य बनी रविनन्दिनी॥ 14॥

तदपि था पड़ता जल पूर्व-सा।
इसलिये अति-व्याकुलता बढ़ी।

विपुल-लोक गये ब्रज-भूप के।
निकट व्यस्त-समस्त अधीर हो ॥ 15 ॥

प्रकृति को कुपिता अवलोक के।
प्रथम-से ब्रज-भूपति व्यग्र थे।
विपुल-लोक समागत देख के।
बढ़ गई उनकी वह व्यग्रता ॥ 16 ॥

पर न सोच सके नृप एक भी।
उचित यत्न विपत्ति-विनाश का।
अपर जो उस ठौर बहुज्ञ थे।
न वह भी शुभ-सम्मति दे सके ॥ 17 ॥

तड़ित-सी कछनी कटि में कसे।
सु-विलसे नव-नीरद-कान्ति का।
नवल-बालक एक इसी घड़ी।
जन-समागम-मध्य दिख पड़ा ॥ 18 ॥

ब्रज-विभूषण को अवलोक के।
जन-समूह प्रफुल्लित हो उठा।
परम-उत्सुकता-वश प्यार से।
फिर लगा वदनांबुज देखने ॥ 19 ॥

सब उपस्थित-प्राणि-समूह को।
निरख के निज-आनन देखता।
बन विशेष विनीत मुकुन्द ने।
यह कहा ब्रज-भूतल-भूप से ॥ 20 ॥

जिस प्रकार घिरे घन व्योम में।
प्रकृति है जितनी कुपिता हुई।
प्रकट है उससे यह हो रहा।
विपद का टलना बहु-दूर है ॥ 21 ॥

इसलिये तज के गिरि-कन्दरा।
अपर यत्न न है अब त्राण का।

उचित है इस काल सयत्न हो।
शरण में चलना गिरि-राज की॥ 22॥

बहुत सी दरियां अति-दिव्य हैं।
वृहत कन्दर हैं उसमें कई।
निकट भी वह है पुर-ग्राम के।
इसलिये गमन-स्थल है वही॥ 23॥

सुन गिरा यह वारिद-गात की।
प्रथम तर्क-वितर्क बड़ा हुआ।
फिर यही अवधारित हो गया।
गिरि बिना "अवलम्ब" न अन्य है॥ 24॥

पर विलोक तमिस्त्र-प्रगाढ़ता।
तड़ित-पात प्रभंजन-भीमता।
सलिल-प्लावन वर्षण-वारि का।
विफल थी बनती सब-मंत्रणा॥ 25॥

इस लिये फिर पंकज-नेत्र ने।
यह सओज कहा जन-वृन्द से।
रह अचेष्टित जीवन त्याग से।
मरण है अति-चारु सचेष्ट हो॥ 26॥

विपद-संकुल विश्व-प्रपंच है।
बहु-छिपा भवितव्य रहस्य है।
प्रति-घटी पल है भय प्राण का।
शिथिलता इस हेतु अ-श्रेय है॥ 27॥

विपद से वर-वीर-समान जो।
समर-अर्थ समुद्यत हो सका।
विजय-भूति उसे सब काल ही।
वरण है करती सु-प्रसन्न हो॥ 28॥

पर विपत्ति विलोक स-शंक हो।
शिथिल जो करता पग-हस्त है।

वह आग मे गिरकर काल का ग्रास बनता है

अवनि में अवमानित शीघ्र हो।
कवल है बनता वह काल का ॥ 29 ॥

कब कहां न हुई प्रतिद्वंद्विता।
जब उपस्थित संकट-काल हो।
उचित-यत्न स-धैर्य विधेय है।
उस घड़ी सब-मानव-मात्र को ॥ 30 ॥

सु-फल जो मिलता इस काल है।
समझना न उसे लघु चाहिये।
बहुत हैं, पड़ संकट-स्रोत में ॥
सहस में जन जो शत भी बचें ॥ 31 ॥

इसलिये तज निंद्य-विमूढ़ता।
उठ पड़ो सब लोग स-यत्न हो।
इस महा-भय-संकुल काल में।
बहु-सहायक जान ब्रजेश को ॥ 32 ॥

सुन स-ओज सु-भाषण श्याम का।
बहु-प्रबोधित हो जन-मण्डली।
गृह गई पढ़ मंत्र-प्रयत्न का।
लग गई गिरि ओर प्रयाण में ॥ 33 ॥

बहु-चुने-दृढ़-वीर सु-साहसी।
सबल-गोप लिये बलवीर भी।
समुचित स्थल में करने लगे।
सकल की उपयुक्त सहायता ॥ 34 ॥

सलिल प्लावन से अब थे बचे।
लघु-बड़े बहु-उन्नत पंथ जो।
सब उन्हीं पर हो स-सतर्कता।
गमन थे करते गिरि-अंक में ॥ 35 ॥

यदि ब्रजाधिप के प्रिय-लाडिले।
पतित का कर थे गहते कहीं।

उदक में घुस तो करते रहे।
वह कहीं जल-बाहर मग्न को ॥36 ॥

पहुंचते बहुधा उस भाग में।
बहु अकिंचन थे रहते जहां।
कर सभी सुविधा सत्-भांति की।
वह उन्हें रखते गिरि-अंक में ॥ 37 ॥

परम-वृद्ध असम्बल लोक को।
दुख-मयी-विधवा रुज-ग्रस्त को।
बन सहायक थे पहुंचा रहे।
गिरि सु-गह्वर में कर यत्न वे ॥ 38 ॥

यदि दिखा पड़ती जनता कहीं।
कु-पथ में पड़ के दुख भोगती।
पथ-प्रदर्शन थे करते उसे।
तुरत तो उस ठौर ब्रजेन्द्र जा ॥ 39 ॥

जटिलता-पथ की तम गाढ़ता।
उदक-पात प्रभंजन भीमता।
मिलित थीं सब साथ, अतः घटी।
दुख-मयी-घटना प्रति-पंथ में ॥ 40 ॥

पर सु-साहस से सु-प्रबंध से।
ब्रज-विभूषण के जन एक भी।
तन न त्याग सका जल-मग्न हो।
मर सका गिर के न गिरीन्द्र से ॥ 41 ॥

फलद-सम्बल-लोचन के लिये।
क्षणप्रभा अतिरिक्त न अन्य था।
तदपि साधन में प्रति-कार्य के।
सफलता ब्रज-वल्लभ को मिली ॥ 42 ॥

परम-सिक्त हुआ वपु-वस्त्र था।
गिर रहा शिर ऊपर वारि था।

लग रहा अति उग्र-समीर था।
पर विराम न था ब्रज-बन्धु को ॥ 43 ॥

पहुंचते वह थे शर-वेग से।
विपद-संकुल आकुल-ओक में।
तुरत थे करते वह नाश भी।
परम-वीर-समान विपत्ति का ॥ 44 ॥

लख अलौकिक-स्फूर्ति-सु-दक्षता।
चकित-स्तंभित गोप-समूह था।
अधिकतः बंधता सह ध्यान था।
ब्रज-विभूषण हैं शतशः बने ॥ 45 ॥

स-धन गोधन को पुर ग्राम को।
जलज-लोचन ने कुछ काल में।
कुशल से गिरि-मध्य बसा दिया।
लघु बना पवनादि-प्रमाद को ॥ 46 ॥

प्रकृति क्रुद्ध छह सात दिनों रही।
कुछ प्रभेद हुआ न प्रकोप में।
पर स-यत्न रहे वह सर्वथा।
तनिक-क्लान्ति हुई न ब्रजेन्द्र को ॥ 47 ॥

प्रति-दरी प्रति-पर्वत-कन्दरा।
निवसते जिनमें ब्रज-लोग थे।
बहु-सु-रक्षित थी ब्रज-देव के।
परम-यत्न सु-चारु प्रबन्ध से ॥ 48 ॥

भ्रमण ही करते सबने उन्हें।
सकल काल लखा स-प्रसन्नता।
रजनि भी उनकी कटती रही।
स-विधि-रक्षण में ब्रज-लोक के ॥ 49 ॥

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में।
ब्रज-धराधिप के प्रिय-पुत्र का।

सकल लोग लगे कहने उसे।
रख लिया उंगली पर श्याम ने ॥ 50 ॥

जब व्यतीत हुए दुख-वार ए।
मिट गया पवनादि प्रकोप भी।
तब बसा फिर से ब्रज-प्रान्त, औ
परम-कीर्ति हुई बलबीर की ॥ 51 ॥

अहह ऊधव सो ब्रज-भूमि का।
परम-प्राण-स्वरूप सु-साहसी।
अब हुआ दृग से बहु-दूर है।
फिर कहो विलपे ब्रज क्यों नहीं ॥ 52 ॥

कथन में अब शक्ति न शेष है।
विनय हूं करता बन दीन मैं।
ब्रज-विभूषण आ निज-नेत्र से।
दुख-दशा निरखें ब्रज-भूमि की ॥ 53 ॥

सलिल-प्लावन से जिस भूमि का।
सदय हो कर रक्षण था किया।
अहह आज वही ब्रज की धरा।
नयन-नीर-प्रवाह-निमग्न है ॥ 54 ॥

शब्दार्थ-आदि

(1)	प्रभंजन	=	प्र + भंजन, बहुत अधिक तोड़फोड़ करने वाली, आंधी या तूफान
	गाढ़ मसी-समा	=	गहरे अधंकार के समान
	प्रकंपित कारिणी	=	कंपा देने वाली
(2)	अशनि पात	=	वज्रपात, बिजली गिरना और कड़कडाहट होना
(4)	तोयधि	=	तोय (जल) धि (धारण) करने वाले, बादल, मेघ, नीरद, जलज, पयोद, सागर

तुंग	=	ऊंची-ऊंची
निबिड़	=	घने, सघन
असितता	=	अ (नहीं) सितता (श्वेतता) अर्थात् श्यामता, कालापन, मेघ घनीभूत होते हैं तब श्यामवर्णता बढ़ जाती है।
रवकारिता	=	गर्जन-तर्जन
(5) प्रलय के घन	=	मेघ, विस्फोट का वातावरण
कोटिशः	=	अपरिमित, करोड़ों
(6) उरदारक	=	भयानक, छाती फाड़ देने वाली
गुरु	=	भारी, प्रचंड
पवि-कर्ण	=	वज्र कर्णी, बधिर, बहरा व्यक्ति
(7) वर-वासर	=	श्रेष्ठ चमकता हुआ दिन
खनि	=	खान, खदान
भाद्र कुहू निशा	=	अंधेरी रात (भाद्रपद मास की अमावस जैसी)
(8) समां	=	वातावरण
(9) पीवर प्राण को	=	स्वस्थ मन को
(10) गुरु डालियां	=	वृक्षों की भारी डालियां
क्षण-प्रभा	=	क्षण भर चमक कर गिरने वाली बिजली, वज्रपात, बिज्जु
(11) वि-चूर्णित	=	वि (विशेषतः) चूर्णित (चूर-चूर हुए) अर्थात खंड-खंड होकर टूटते थे।
(12) तम तोम प्रगाढ़ता	=	अंधकार की गहनता
(13) लघु गर्त्त	=	छोटा खड्डा
रवि नंदिनी	=	यमुना नदी
(16) प्रथम से समागत	=	पहले से ही एकत्रित, आए हुए
(17) अपर	=	अन्य, दूसरे
(18) कछनी	=	लंगोटी, पीताम्बर
नवल बालक	=	किशोर
(19) वदनांबुज	=	कमल-मुख
(20) दरी	=	पर्वत के पठार में स्थित कंदरा

(24)	वारिद गात	=	मेघवर्णी, श्यामल शरीर
	अवधारित	=	निश्चित
(26)	अचेष्टित	=	अकर्मण्य, प्रयत्नहीन
(27)	अश्रेय	=	अनुचित, अकल्याणकारी
(28)	अर्थ समुद्यत	=	के लिये, हेतु भली-भांति तैयार
(29)	पग-हस्त	=	हाथ-पैर
(30)	विधेय	=	विधि सम्मत, उचित
(31)	सहस	=	सहस्र, हजारों में से
(32)	विमूढ़ता	=	विशेष अकर्मण्यता, कर्त्तव्यहीनता
(33)	प्रबोधित	=	सूचित, अनुदेश पाकर
(35)	उन्नत पंथ	=	ऊंचे रास्ते
(36)	उदक	=	जल
	पतित	=	(जल में) गिरे हुए
(37)	अकिंचन	=	तुच्छ जन, गरीब
(38)	असम्बल	=	निराश्रित, बेसहारा
	रुज	=	रोग
(39)	प्रति पंथ	=	हर मार्ग पर
(40)	गिरीन्द्र	=	पर्वत श्रेष्ठ, गोवर्धन पर्वत
(42)	फलद सम्बल	=	उपयोगी सहारा
	साधन में	=	सिद्ध करने में, पूरा करने में
(43)	सिक्त	=	भीगा, तर बतर
(44)	वपु-वस्त्र	=	शरीर पर पहने वस्त्र
	शर वेग से	=	तीर की तरह, तुरन्त
	ओक	=	स्थान, घर
(45)	शतशः	=	अनेक रूपों में, हर जगह मौजूद
(47)	प्रभेद	=	अन्तर
(48)	निवसते	=	बसते थे, आश्रय लिये हुये थे
(49)	लखा	=	देखा
(50)	प्रसार	=	फैलाव, आवागमन दौड़-धूप

प्रश्न तथा अभ्यास

1. "प्रिय प्रवास" के इस अंक की भाषागत विशेषता कौनसी है ?
   (क) तत्सम शब्द प्रधानता
   (ख) तद्‌भव शब्द प्रधानता
   (ग) आंचलिक शब्द प्रधानता
   (घ) क्लिष्ट शब्द प्रधानता
   (ङ) अप्रचलित शब्द प्रधानता ( )

2. "पर सु-साहस से, सु-प्रबंध से।
   ब्रज-विभूषण के जन-एक भी।
   तन न त्याग सका, जल-मग्न हो।
   मर सका गिर के न गिरीन्द्र से॥" — इन पंक्तियों से श्रीकृष्ण के किस गुण का पता लगता है ?
   (क) वाकपटुता (ख) ब्रज-विभूषणत्व
   (ग) धीर-वीरता (घ) पर दुख कातरता
   (ङ) साहसिक प्रबंध पटुता ( )

3. "लख अलौकिक-स्फूर्ति-सुदक्षता।
   चकित-स्तम्भित गोप-समूह था।
   अधिकतः बंधता यह ध्यान था।
   ब्रज-विभूषण हैं शतशः बने॥" — ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण अनेक रूपों में क्यों लग रहे थे ?
   (क) उनकी विविध क्रियाओं के कारण
   (ख) स्वामी की तरह रक्षा करने के कारण
   (ग) सबको सांत्वना देने के कारण।
   (घ) ईश्वर का अवतार होने के कारण।
   (ङ) विपत्ति में हर स्थान पर उपस्थित होने के कारण। ( )

4. "तरल तोयधि-तुंग तरंग से।
   निविड़-नीरद थे घिर घूमते।
   प्रबल हो जिनकी बढ़ती रही।
   असितता घनता-रवकारिता॥" — इसमें प्रयुक्त अलंकार कौन सा है ?

(क) उपमा　　　　(ख) रूपक

(ग) अन्योक्ति　　　　(घ) श्लेष

(ङ) उत्प्रेक्षा　　　　(　　)

5. "दिवस एक प्रभंजन का हुआ।
अति प्रकोप, घटा नभ में घिरी।
बहु भयावह-गाढ़-मसी-समा।
सकल-लोक-प्रकम्पित-कारिणी ॥" — इस छन्द में —

(1) वर्ण गणना (प्रति चरण) कीजिये।

(2) तीन-तीन वर्णों के समूह बनाइये।

(3) हर समूह की गण-योजना तैयार कीजिये।

(4) पहचानिए कि गणों का क्या क्रम आता है।

(5) इस लक्षण वाले छन्द का नाम द्रुत विलम्बित है (न, भ, भ, र)

6. निम्नलिखित आशय वाली पंक्तियाँ खोज कर बताइए —

(1) चमचमाता दिन भादों की अमावसी रात में बदल गया।

(2) आकाश में मानो जल के पर्वत स्थिर हो गए।

(3) वज्रपात से पर्वत की चोटियां टूट-टूट कर गिरने लगीं।

(4) अकर्मण्य रह कर मरने की अपेक्षा प्रयत्नवान होकर मरना श्रेष्ठ है।

7. अनुप्रास अलंकार का आशय समझाइए। पाठ में से उपयुक्त उदाहरण देकर अपने आशय को पुष्ट कीजिये।

8. प्रलयंकारी वर्षा से आतंकित ब्रजवासियों को कृष्ण ने जो प्रबोधन दिया उसे अपनी भाषा में लिखिये।

9. आज के हिन्दी प्रयोग में विशेषण-विशेष्य के समासों को समास चिह्न के साथ नहीं लिखते। बताइये कि इस शैली के दृष्टिकोण से कौन से रूप अब असंगत हो गए हैं? क्यों ?

(1) अति-प्रकोप　　　　(2) बहु-भयावह-गाढ़-मसी-समा

(3) प्रभंजन-वेग　　　　(4) तुंग-तरंग

(5) गगन-मंडल　　　　(6) उर-दारक-दामिनी

(7) पवि-कर्ण　　　　(8) वर-वासर

(9) असितता-खनि-भाद्र-कुहू-निशा　　　　(10) जलद-नाद

10. "प्रिय प्रवास" के इस अंश में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का कौन सा रूप प्रकट हुआ है? उनके गुणों का उल्लेख करते हुए, अपने उत्तर की पुष्टि में, उपयुक्त उदाहरण भी दीजिये।

11. वर्षा के प्रकोप का जो चित्रण इस पाठ में हुआ है, उसे पत्र शैली में अपने किसी मित्र को लिखिये।

12. इस पाठ में श्रीकृष्ण को "सर्वव्यापक" क्यों माना गया है ? इसके लिये श्रीकृष्ण के सेवा कार्यों का विवरण तैयार कीजिये।

---

3. साकेत

थिलीशरण गुप्त (1886-1964) :

गुप्तजी अपने युग के "राष्ट्रकवि" थे। तुलसी दास की तरह इन्होंने अपने समय की र शैली में काव्य रचना की थी। महाकाव्य से लेकर मुक्तक गीतों तक की हर तरह की रचना ा इनका अपूर्व भंडार है। "साकेत" (1929), जयभारत, भारत भारती, यशोधरा, द्वापर, जयद्रथ ध, रंग में भंग, पंचवटी आदि अनेक प्रबंध काव्य रच कर इन्होंने एक ओर तो भारतीय संस्कृति ीर सामाजिक आदर्शों का आख्यान किया तथा दूसरी ओर समसामयिक स्वतंत्रता आंदोलन ी भाव भूमि को प्रेरणा देने का काम किया।

केत (1929) :

रामायण की कथा को आधार बनाकर गुप्तजी ने एक नये दृष्टिकोण से "साकेत" की ना की थी। वह दृष्टिकोण था— रामकथा के उपेक्षित किंतु महत्त्वपूर्ण पात्रों का चारित्रिक मव उभारना। रामकथा पर इससे पूर्व जितने भी महाकाव्य रचे गए, उनमें उर्मिला, मांडवी जैसे त्रों को प्रकाश में नहीं लाया गया था।

गुप्तजी का दृष्टिकोण दो प्रकार से सुधारवादी था —

(1) एक तो राम वनवास की कथा को मनोवैज्ञानिक और तर्क संगत स्वरूप प्रदान करना और कैकेयी के चरित्र को परिष्कृत करना।

(2) उर्मिला के त्यागमय जीवन को उत्कृष्टता प्रदान करना और उसकी मानसिक स्थिति, आत्म प्रबोधन और उदात्त वृत्तियों को प्रकाश में लाना।

'साकेत' की कथावस्तु राम के राज्याभिषेक के प्रसंग से आरंभ होती है। उस अवसर लक्ष्मण और उर्मिला की अपार प्रसन्नता उभार कर कवि ने उनके भावी वियोग की वेदना आधारफलक तैयार किया है। मंथरा की कूटबुद्धि, कैकेयी की ममता-भ्रष्ट मानसिक स्थिति ाम के वनवास के प्रसंग को कवि ने वर्तमान युग की विचारधारा के अनुसार चित्रित किया परम्परित आज्ञाकारिता और वचन पालकता को निभाते हुए प्रजावत्सल राम का चरित्र उभारा

गया है। उसी समय लक्ष्मण की भ्रातृसेवा और कर्तव्य भावना का चित्रण करते हुए उर्मिला की तापस वृत्ति उभारी गई है। दशरथ के प्राण त्याग, भरत द्वारा कैकेयी की प्रताड़ना के बाद कवि ने चित्रकूट में कैकेयी के पश्चाताप की काव्य-योजना की है। वहां कैकेयी के चरित्र को न्याय-संगत बनाने का प्रावधान किया गया है। वह 'साकेत' का अत्यन्त मार्मिक प्रसंग है। उसके बाद काव्य का केन्द्र उर्मिला बन जाती है। उसकी विरह वेदना का उत्कर्ष बताने के बाद कवि भरत और उनकी पत्नी मांडवी की अवस्था निरूपित करता है। भरत लक्ष्मण की वीरता युद्ध में मूर्छा, संजीवनी बूटी से पुनर्जीवन आदि की सूचना देकर उर्मिला की वेदना कम करते हुए बताए गए हैं। अंत में अयोध्या की सारी प्रजा युद्धार्थ तैयार होती है तभी वसिष्ठ राम की विजय की सूचना देते हैं।

इस तरह राज्याभिषेक से लेकर लंका विजय और वापस साकेत आने की कथा इस महाकाव्य में चित्रित हुई है। साकेत का मुख्य रस वियोग शृंगार हैं और वीर, करुण, रौद्र आदि रस सहायक रूप में व्यंजित हुए हैं। महाकाव्य की नायिका उर्मिला है और प्रसंगतः लक्ष्मण के धीरोदात्त नायकत्व को प्रखरता प्रदान की गई है।

प्रस्तुत अंश :

प्रस्तुत अंश का कथानक उस समय का है जब चित्रकूट में राम निवास करते हैं। दशरथ के महाप्रयाण के बाद राजभवन की रानियाँ और भरत राम को लौटा लाने के प्रयोजन से वहां पहुंचते हैं। सभा बैठती है और उसमें विचार-विमर्श तथा तर्क-वितर्क उठते हैं। राम अपनी गंभीर वाणी में वनवास के लक्ष्य का निरूपण करते हैं, भरत अपनी कलंक गाथा पर पश्चाताप करते हैं और कैकेयी अपने मानसिक दुख का परिताप करती हुई वातावरण को मार्मिक बना देती है।

करुण रस इस अंश का मुख्य रस है। राम के वचनों में श्रेष्ठ जनों के सामाजिक आदर्श और जीवन मूल्यों का उद्देश्य व्यक्त हुआ है। लक्ष्मण की शंका-कुशंका के बीच वीर भाव की व्यंजना है। भरत-मिलाप, पश्चाताप और कैकेयी की वेदनाभिव्यक्ति में करुण रस का परिपाक हुआ है।

भाषा में परिनिष्टित हिंदी का रूप युग तथा संस्कृति के अनुरूप प्रयुक्त हुआ है।

कैकेयी का पश्चात्तप :

सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।
अथवा आकर्षण पुण्यभूमि का ऐसा,
अवतरित हुआ मैं, आप उच्च फल जैसा।
जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,

वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे।
"पर जो मेरा गुण, कर्म स्वभाव धरेंगे,
वे औरों को भी तार, पार उतरेंगे।"
"पर होगा यह उद्देश्य सिद्ध क्या वन में ?
सम्भव है चिन्तन-मनन मात्र निर्जन में।"
"वन में निज साधन सुलभ धर्म से होगा,
जब मन से होगा तब न कर्म से होगा ?
बहु जन वन में हैं बने ऋक्ष-वानर-से,
मैं दूंगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से।
चल दण्डक बन में शीघ्र निवास करूँगा,
निज तपोधनों के विघ्न विशेष हरूँगा।
उच्चरित होती चले वेद की वाणी,
गूंजे गिरि-कानन-सिन्धु-पार कल्याणी।
अम्बर में पावन-होम-धूम घहरावे,
वसुधा का हरा दुकूल भरा लहरावे।
तत्वों का चिन्तन करें स्वस्थ हो ज्ञानी,
निर्विघ्न ध्यान में निरत रहें सब ध्यानी।
आहुतियां पड़ती रहें अग्नि में क्रम से,
उस तपस्त्याग की विजय-वृद्धि हो हमसे।
मुनियों को दक्षिण देश आज दुर्गम है,
बर्बर कोणप-गण वहाँ उग्र यम-सम हैं।
वह भौतिक मद से मत्त यथेच्छाचारी,
मेटूँगा उसकी कुगति-कुमति मैं सारी।"
"पर यह क्या, खग-मृग भीत भगे आते हैं
मानो पीछे से व्याध लगे आते हैं।
चर्चा भी अच्छी नहीं बुरों की मानो,
सांपों की बातें जहां वहीं वे जानो।
अस्फुट कोलाहल भरित मर्मरित वन है,
वह धूलि-धूसरित उच्च गंभीर गगन है।
देखो, यह मेरा नकुल देहली पर से,

बाहर की गति-विधि देख रहा है डर से।
लो, ये देवर आ रहे बाढ़ के जल-से,
पल पल में उथले-भरे, अचल-चंचल से।
होगी ऐसी क्या बात, न जानें स्वामी,
भय न हो उन्हें, जो सदय पुण्य-पथ-गामी।"
"भाभी, भय का उपचार चाप यह मेरा,
दुगुना गुणमय आकृष्ट आप यह मेरा,
कोटिक्रम-सम्मुख कौन टिकेगा इसके -
आई परास्तता कर्म भोग में जिसके।
सुनता हूँ आये भरत वहाँ दल-बल से,
वन और गगन हैं विकल चमू-कलकल से।
विनयी होकर भी करें न आज अनय वे ?
विस्मय क्या है, क्या नहीं स्वमातृतनय वे,
पर कुशल है कि असमर्थ नहीं हैं हम भी,
जैसे को तैसे, एक बार हो यम भी।
हे आर्य, आप गम्भीर हुए क्यों ऐसे -
निज रक्षा में भी तर्क उठा हो जैसे ?
आये होंगे यदि भरत कुमति-वश वन में,
तो मैंने यह संकल्प किया है मन में –
उनको इस शर का लक्ष चुनूँगा क्षण में,
प्रतिषेध आपका भी न सुनूँगा रण में।"
"गृह-कलह शान्त हो, हाय ! कुशल हो कुल की,
अक्षुण्ण अतुलता रहे सदैव अतुल की।
विग्रह के ग्रह का कोप न जाने अब क्यों,
आ बैठे देवर, राज्य छोड़ तुम जब यों ?"
"भद्रे, न भरत भी उसे छोड़ आये हों,
मातुश्री से भी मुँह न मोड़ आये हों।
लक्ष्मण, लगता है यही, मुझे हे भाई,
पीछे न प्रजा हो पुरी शून्य कर आई।"
"आशा अन्तःपुर मध्यवासिनी कुलटा,

सीधे हैं आप, परन्तु जगत है उलटा
जब आप पिता के वचन पाल सकते हैं,
तब माँ की आज्ञा भरत टाल सकते हैं ?"
"भाई, कहने को तर्क अकाट्य तुम्हारा,
पर मेरा ही विश्वास सत्य है सारा।
माता का चाहा किया राम ने आहा,
तो भरत करेंगे क्यों न पिता का चाहा।
मानव-मन दुर्बल और सहज चंचल है,
इस जगती-तल में लोभ अतीव प्रबल है।
देवत्व कठिन, दनुजत्व सुलभ है नर को,
नीचे से उठना सहज कहाँ ऊपर को,
पर हम क्यों प्राकृत-पुरुष आपको मानें ?
निज पुरुषोत्तम की प्रकृति क्यों न पहचानें ?
हम सुगति छोड़ क्यों कुगति विचारें जन की ?
नीचे-ऊपर सर्वत्र तुल्यगति मन की।"
"बस हार गया मैं आर्य आपके आगे
तब भी तनु में शत पुलक भाव ये जागे।"
"देवर मैं तो जी गई, मरी जाती थी,
विग्रह की दारुण मूर्ति दृष्टि आती थी।
अच्छा ले आये आर्यपुत्र, तुम इनको,
ये तुम्हें छोड़ कब, कहाँ मानते किनको ?
सन्तोष मुझे है आज, यहाँ देवर ये
हा ! क्या जाने क्या कर न बैठते घर ये।"
"पर मैं चिन्तित हूँ सहज प्रेम के कारण,
हठपूर्वक मुझको भरत करें यदि वारण ?
वह देखो, वन के अन्तराल से निकले,
मानो दो तारे क्षितिज-जाल से निकले।"
"वे भरत और शत्रुघ्न हमीं दो मानो,
फिर आया हमको यहाँ प्रिये, तुम जानो।"
कहते-कहते प्रभु उठे, बढ़े वे आगे,

सीता-लक्ष्मण भी संग चले अनुरागे।
देखी सीता ने स्वयं साक्षिणी हो - हो,
प्रतिमाएँ सम्मुख एक एक की, दो-दो।
रह गये युग्म स्ववेंद्य आप ही आधे,
जगती ने ये निज चार चिकित्सक साधे।
दोनों आगत आ गिरे दण्डवत नीचे,
दोनों से दोनों गये हृदय पर खींचे।
सीता-चरणामृत बना नयन-जल उनका,
इनका दृगम्बु अभिषेक सुनिर्मल उनका।
"रोकर रज में लोटो न भरत, ओ भाई,
यह छाती ठंडी करो सुमुख सुखदायी।
मानस के मोती यों न बिखेरो, आओ,
उपहार-रूप यह हार मुझे पहनाओ।"
"हा आर्य, भरत का भाग्य रजोमय ही है,
उर रहते उर्वी उसे तुम्हीं ने दी है।
उस जड़ जननी का विकृत वचन तो पाला,
तुमने इस जन की ओर न देखा-भाला।"
"ओ निर्दय, कर दे न यों निरुत्तर मुझको,
रे भाई, कहना यही उचित क्या तुझको ?
चिरकाल राम है भरत-भाव का भूखा,
पर उसको तो कर्त्तव्य मिला है रूखा।"
इतने में कलकल हुआ वहां जय जय का,
गुरुजन सह पुरजन-पंच-सचिव-समुदय का।
हय-गज-रथादि निज नाद सुनाते आये,
खोये-से अपने प्राण सभी ने पाये।
क्या ही विचित्रता चित्रकूट ने पाई,
सम्पूर्ण अयोध्या जिसे खोजती आई।
बढ़कर प्रणाम कर वसिष्ठादि मुनियों को,
प्रभु ने आदर से लिया गृही मुनियों को।
जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,

हत जिसकी पंकज-पंक्ति, अचल-सी काया।
उस सरसी-सी, आभरणरहित, सितवसना,
सिहरे प्रभु मां को देख, हुई जड़ रसना।
"हा तात!" कहा चीत्कार समान उन्होंने,
सीता सह लक्ष्मण लगे उसी क्षण रोने।
उमड़ा मांओं का हृदय हाय ! ज्यों फटकर,
"चिर मौन हुए वे तात तुम्हीं को रट कर।"
"जितने आगत हैं रहें क्यों न गत-धर्मा,
पर मैं उनके प्रति रहा क्रूर ही कर्मा।"
दी गुरु वसिष्ठ ने उन्हें सान्त्वना बढ़कर,
वे समुपस्थित सर्वत्र कीर्ति पर चढ़कर।
वे आप उऋण ही नहीं हुए जीवन से,
उलटा भव को कर गये ऋणी निज धन से,।
वे चार-चार दे गये एक के बदले,
तुम तक को यों तज गये टेक के बदले।
"वे हैं अशोच्य, हां स्मरण-योग्य हैं सबके,
अभिमान-योग्य, अनुकरण-योग्य हैं सबके।"
बोले गुरु से प्रभु साश्रुवदन, बद्धांजलि —
दे सकता हूं क्या उन्हें अभी श्रद्धांजलि ?
पितृ-देव गये हैं हाय ! तृषित ही सुरपुर।"
भर आया उनका गला, हुआ आतुर उर।
फिर बोले वे — "क्या करूं और मैं कहिए,
गुरुदेव, आप ही तात-तुल्य अब रहिए।"
"वह भार प्राप्त है मुझे प्रपूर्ण प्रथम ही,
हम जब जो उनके लिए करें, है कम ही।'
"भगवन्, इस जन में भक्तिभाव अविचल है,
पर अर्पणार्थ बस पत्र-पुष्प-फल-जल है।"
"हां। याद न आवे उन्हें तुम्हारे वन की ?"
प्रभु-जननी रोने लगीं व्यथा से मन की।
"वे सब दुःखों से परे आज हैं देवी,

स्वर्गीय भाव से भरे आज हैं देवी।"
"उनको न राम-वनवास देख दुख होगा,
अवलोक भरत का वही भाव सुख होगा।"
गुरु-गिरा श्रवण कर हुए सभी गद्गद्-से,
बोले तब राघव भरे स्नेह के नद-से —
"पूजा न देखकर देव भक्ति देखेंगे,
थोड़े को भी वे सदय बहुत लेखेंगे।"
कौसल्या को अब रहा न मान-परेखा,
पर कैकेयी की ओर उन्होंने देखा।
बोली वह अपना कण्ठ परिष्कृत करके,
प्रभु के कन्धे पर वलय-शून्य कर धर के—
"है श्रद्धा पर ही श्राद्ध, न आडम्बर पर,
पर तुम्हें कमी क्या, करो, कहें जो गुरुवर।"
यह कह मानो निज भार उतारा उसने,
लक्ष्मण-जननी की ओर निहारा उसने।
कुछ कहा सुमित्रा ने न अश्रुमय मुख से,
सिर से अनुमति दी नेत्र पोंछकर दुख से।
"जो आज्ञा" कह प्रभु घूम अनुज से बोले—
"लेकर अपने कुछ चुने वनेचर भोले,
सबका स्वागत-सत्कार करो तुम तब लौं,
मैं करूं स्वयं करणीय कार्य सब जब लौं।"
यह कह सीता-सह नदी-तीर प्रभु आये,
श्रद्धा-समेत सद्धर्म समान सुहाये।
पीछे परिजन विश्वास-सदृश थे उनके,
फल-सम लक्ष्मण ने दिया आपको चुनके।

पट मण्डप चारों ओर तने मन भाये,
जिन पर रसाल, मधु, निम्ब, जम्बु, वट छाये।
मानो बहु करि-पटि चित्रकूट ने पाये,
किंवा नूतन घन उसे घेर घिर आये।

आलान बने द्रुम-काण्ड गजों के जैसे,
गज-निगड़ वलय बन गये द्रुमों के वैसे।
च्युत पत्र पीठ पर पड़े, फुरहरी आई,
घोड़ों ने ग्रीवा मोड़ दृष्टि दौड़ाई।

नव उपनिवेश-सा बसा घड़ी भर ही में,
समझा लोगों ने हैं कि सभी घर ही में।
लग गई हाट जिसमें न पड़े कुछ देना,
ले लें उसमें जो वस्तु जिन्हें हो लेना।
बहु कन्द-मूल-फल कोल-भील लाते थे,
पहुंचाते थे सर्वत्र, प्रीति पाते थे —
"बस, पत्र-पुष्प हम वन्यचरों की सेवा,
महुवा मेवा है, बेर कलेवा, देवा।"

उस ओर पिता के भक्ति-भाव से भरके,
अपने हाथों उपकरण इकट्ठे करके,
प्रभु ने मुनियों के मध्य श्राद्ध-विधि साधी,
ज्यों दण्ड चुकावे आप अवश अपराधी।
पाकर पुत्रों में अटल प्रेम अघटित-सा,
पितृरात्मा का परितोष हुआ प्रकटित-सा।
हो गई होम की शिखा समुज्ज्वल दूनी,
मन्दानिल में मिल खिली धूप की धूनी।
अपना आमंत्रित अतिथि मानकर सबको,
पहले परोस परितृप्त-दान कर सबको,
प्रभु ने स्वजनों के साथ किया भोजन यों,
सेवन करता है मन्द पवन उपवन ज्यों।

तदनन्तर बैठी सभा उटज के आगे,
नीले वितान के तले दीप बहु जागे।
टकटकी लगाये नयन सुरों के थे वे,
परिणामोत्सुक उन भयातुरों के थे वे।

उत्फुल्ल करौंदी-कुंज वायु रह रहकर,
करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह-महकर।
वह चन्द्रलोक था, कहां चांदनी वैसी,
प्रभु बोले गिरा गंभीर नीरनिधि जैसी।
"हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना।"
सब सजग हो गये, भंग हुआ ज्यों सपना।

"हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब, तब भी ?
पाया तुमने तरु-तले अरण्य-बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?
तनु तड़प तड़प कर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
हा ! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा,
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा।
अब कौन अभीप्सित और आर्य, वह किसका ?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा ?"
प्रभु ने भाई को पकड़ हृदय पर खींचा,
रोदन जल से सविनोद उन्हें फिर सींचा।
"उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको।"

"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को।"
चौंके सब सुनकर अटल कैकेयी-स्वर को।
सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृत्ता यथा विधु-लेखा।
बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंगा,
वह सिंही अब थी हहा ! गोमुखी गंगा।
"हाँ जनकर भी मैंने न भरत को जाना,

अब सुन लें, तुमने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अबलाजन के लिए कौन-सा पथ है ?
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ।
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।

ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ ?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ ?"
थी सनक्षत्र शशि-निशा ओस टपकाती,
रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती।
उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी,
सबमें भय-विस्मय और खेद भरती थी।

"क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।
जल पंजर-गत अब अरे अधीर, अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे!
पर था केवल क्या ज्वलित भाव ही मन में ?
क्या शेष बचा था कुछ न और इस जन में ?
कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य-मात्र, क्या तेरा ?
पर आज अन्य-सा हुआ वत्स भी मेरा।
थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके ?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे ?
कहते आते थे यही अभी नर देही,
माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।

अब कहें सभी यह हाय ! विरुद्ध विधाता,
है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता !
बस मैंने इसका बाह्य-मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा।
युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा
धिक्कार ! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।"

"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।"
पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई
"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।"

"हां ! लाल ? उसे भी आज गमाया मैंने,
विकराल कुयश ही यहाँ कमाया मैंने।
निज स्वर्ग उसी पर वार दिया था मैंने,
हर तुम तक से अधिकार लिया था मैंने।
पर वही आज यह दीन हुआ रोता है,
शंकित सबसे धृत हरिण-तुल्य होता है।
श्रीखण्ड आज अंगार-चण्ड है मेरा,
तो इससे बढ़कर कौन दण्ड है मेरा ?"

शब्दार्थ आदि

मदीय	=	मेरा
ऋक्ष वानर-से	=	आदिम अवस्था में, शोषित, दमित और दलित
आर्यत्व	=	सभ्य जीवन, संस्कार, श्रेष्ठता

निरत रहें	=	लगे रहें
कोणप गण	=	एक प्राचीन गण जो नास्तिक, बर्बर अनाचारी और लुटेरों का गण था। रावण उसका गणाधिपति था।
यथेच्छाचारी	=	अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करने वाला
भीत	=	भयभीत (होकर)
व्याध	=	शिकारी
मर्मरित	=	मर्मर ध्वनि से युक्त
नकुल	=	नेवला
बाढ़ के जल से	=	तेजी के साथ, रोष-जोश के साथ
चाप	=	धनुष
दुगुना गुणमय	=	दोहरी प्रत्यंचा वाला
चमू	=	सेना
अनय	=	अनीति का कार्य
स्व मातृ तनय	=	अन्ततः अपनी माता कैकेयी (रामद्रोही) के ही तो पुत्र हैं।
कुमति वश	=	दुर्बुद्धि के साथ, राम-लक्ष्मण को वन में परास्त या नष्ट करने की दुर्बुद्धि से
प्रतिषेध	=	निषेध, मनाही
अक्षुण्ण	=	अटूट, समूचा
विग्रह	=	भेद, लड़ाई-झगड़ा
अन्तराल	=	भीतर, मध्य
युग्म स्ववैंद्य	=	देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार
रजोमय	=	धूल में मिला हुआ, मलिन
उर्वी	=	पृथ्वी, धरती, राजपाट
भरत भाव	=	श्रद्धा, प्रेम और समर्पण भाव
गृही	=	गृहस्थ जन, घर के लोग
गुनी	=	विद्वान, कलावान आदि
अचल-सी	=	स्थिर और शांत
सरसी-सी	=	छोटी तलैया जैसे (जिस पर पाला पड़ा हो)
सित वसना	=	सफेद वस्त्र पहने, विधवावेश

समुपस्थित	=	सदा सर्वत्र विद्यमान
अशोच्य	=	शोक करने से परे
प्रपूर्ण	=	भली-भांति भरपूर
अर्पणार्थ	=	अर्पण करने के लिए
परेखा	=	पश्चाताप
वलय शून्य	=	चूड़ा रहित
वनेचर	=	वनवासी जन
कटि पटि	=	कटि वस्त्र
आलान	=	हाथी बांधने के खूंटे
द्रुम काण्ड	=	पेड़ों के तने
निगड़	=	जंजीर
वलय	=	कड़े
मन्दानिल	=	मंद-मंद वायु प्रवाह
उटज	=	कुटिया, पर्णशाला
उन भयातुरों के	=	उन देवताओं के जो कि इस आशंका से त्रस्त थे कि राम क्या निर्णय करते हैं
उत्फुल्ल	=	खिले हुए (करौंदे के कुंजों की सुगंध)
अभीप्सित	=	अपनी इच्छा या कामना
अटल	=	स्थिर, गंभीर और अविचलित
तुषार	=	पाला, बर्फ, शीत, कुहरा
विधु-लेखा	=	चंद्र किरण, चंद्र प्रभा
असंख्य तरंगा	=	मन में विचारों/भावनाओं की असंख्य लहरों से उद्वेलित
सिंही	=	सिंहनी के समान अ..., अवज्ञाशालिनी, निर्भि... और उग्र
गोमुखी गंगा	=	हिमनद से झरती क्षीण, दुर्बल, एक-एक बूंद-... टपकती अधोमुखी पवित्र धारा
अनुताप	=	पश्चाताप
उल्का सी	=	दीप्तिमान होकर
निज विश्वासी	=	आत्म विश्वास युक्त

पंजर-गत	=	कंकाल में बसा, शरीर तो अब रहा नहीं, उसका ओज, लावण्य आदि तो पति प्रेम और पुत्र वत्सलता खोकर नष्ट हो गया है
नर देही	=	मनुष्य जाति
धृत	=	पकड़ा हुआ, कैद
श्रीखंड	=	चन्दन

प्रश्न तथा अभ्यास

1. "संदेश यहां मैं नहीं, स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।" — राम की इस उक्ति से उनका कौन सा स्वरूप प्रकट होता है ?
(क) वे विष्णु के अवतार थे।
(ख) वे समाज सुधारक थे।
(ग) वे अलौकिक पुरुष थे।
(घ) वे सामान्य मानव थे।
(ङ) वे स्वर्ग के दूत थे। ( )

2. "पट-मंडप चारों ओर तने मन भाये,
जिन पर रसाल मधु निम्ब जम्बु वट छाये।
मानो बहु कटि-पट चित्रकूट ने पाये,
किंवा नूतन घन उसे घेर घिर आये ॥" — इन पंक्तियों में किस अलंकार का प्रयोग [हु]आ है ?
(क) यमक (ख) उत्प्रेक्षा
(ग) उपमा (घ) रूपक
(ङ) श्लेष ( )

3. भरत की इस उक्ति में उनका कौन-सा भाव व्यक्त हुआ है ?—
"हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब, तब भी ?"
(क) ग्लानि (ख) कटुता
(ग) दीनता (घ) व्यथा

(ङ) उपालम्भ (

4. "छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,

हे राम, दुहाई करूं और क्या तुझसे !"— कैकेयी के इन उद्‌गारों में उसका कौन स भाव व्यक्त होता है ?

(क) पश्चाताप (ख) करुणा

(ग) व्यंग्य (घ) दीनता

(ङ) आग्रह (

5. भरत के प्रति लक्ष्मण के लिए किस दृष्टिकोण का आभास उनकी इस उक्ति से होत है ?

"विस्मय क्या है, क्या नहीं स्व मातृ तनय वे ?" — अपना आशय लगभग चालीस शब्दों में लिखिए ।

6. "माता का चाहा किया राम ने आहा !

तो भरत करेंगे क्यों न पिता का चाहा !"— इन पंक्तियों का आशय पूर्व प्रसंग सहित लगभग साठ शब्दों में लिखिए।

7. "जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,

हत जिसकी पंकज पंक्ति, अचल-सी काया।

उस सरसी-सी, आभरण रहित, सित वसना,

सिहरे प्रभु मां को देख, हुई जड़ रसना।"— इस अंश की व्याख्या निम्नलिखित बिन्दुओं के अनुसार कीजिए —

(1) इसका पूर्व-प्रसंग क्या है ?

(2) किसका वर्णन किया जा रहा है ?

(3) सित वसना का प्रयोग किसके लिए हुआ है ?

(4) इस शब्द का मन्तव्य क्या है ?

(5) वह मन्तव्य किस कारण से है ?

(6) सरसी का रूपक किसके लिए बांधा गया है ?

(7) पंकज-पंक्ति का रूपकाशय क्या है ?

(8) वैसा आशय क्यों निकलता है ?

(9) जड़ रसना किसकी हुई है ?

(10) क्यों हुई ?

(11) राम के सिहर उठने का क्या कारण था ?

8. "बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंगा,
वह सिंही अब थी हहा ! गोमुखी गंगा।"— इन पंक्तियों का आशय समझाते हुए—
   (1) पहली पंक्ति में व्यक्त विरोध कथन स्पष्ट कीजिए।
   (2) "सिंही" और "गोमुखी गंगा" कहने में कवि का क्या मन्तव्य है, समझाइए।
   (3) "अब" और "हहा !" शब्दों के प्रयोग का महत्त्व समझाइए।
9. "प्रभु ने स्वजनों के साथ, किया भोजन यों,
सेवन करता है मन्द, पवन उपवन ज्यों।" — इन पंक्तियों में
   (1) ह्रस्व, दीर्घ के क्रम से मात्राओं की गणना कीजिए।
   (2) पता लगाइए कि प्रति पंक्ति कुल कितनी मात्राएँ हैं।
   (3) यति से (,) पहले कितनी हैं और बाद में कितनी ?
   (4) मिलान कीजिए कि 13–9 के क्रम से यदि प्रतिचरण 22 मात्राएँ आती हों तो यह "राधिका" नामक छन्द है।
   (5) पाठ में से कोई भी चार चरण चुनिए और इसी प्रकार से छन्द के लक्षणों की जांच कीजिए।
10. चित्रकूट की सभा में कैकेयी ने जो उद्‌गार व्यक्त किए उन्हें मार्मिक ढंग से अपनी भाषा में लिखिए।
11. चित्रकूट की सभा में गगन के तारों के लिए कवि ने 'भयातुर देवताओं के नेत्रों की' समासोक्ति कही है। ऐसी अभिव्यक्ति के पीछे कवि की कौन-सी मान्यता व्यक्त हो रही है और उसका उस मान्यता से क्या विरोध/अविरोध हो सकता है ? जब कि वह राम के लिए कहता है — "संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।" अपना उत्तर लगभग सौ शब्दों में दीजिए।
12. प्रस्तुत पाठ के आधार पर गुप्तजी की निम्नांकित काव्यगत विशेषताओं की समीक्षा उदाहरण सहित कीजिए —
   (1) कैकेयी और भरत के चरित्रों का उन्नयन।
   (2) राम का भव्य मानव के रूप में चित्रण।
   (3) प्रकृति से उपमानों आदि का चयन।
   (4) भाषा की सरलता।
   (5) छंद और अलंकार।

4. कामायनी

जयशंकर प्रसाद :

हिन्दी के छायावादी काव्य जगत् की काव्य-त्रयी (प्रसाद, पंत और निराला) के प्रथम कवि जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ला 10, विक्रमी 1946 को काशी के एक सम्पन्न घराने में हुआ था। उनका निधन कार्तिक शुक्ला एकादशी विक्रमी 1994 में हुआ था।

उन्होंने विद्यालयी शिक्षा तो छठी कक्षा तक ही प्राप्त की किन्तु घर के साहित्यिक वातावरण, कवियों, मनीषियों की संगति और स्वाध्याय से उनकी रचनात्मक प्रतिभा का विकास हुआ। प्रतिभा भी केवल कविता में नहीं, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, चम्पू आदि विविध क्षेत्रों में विकसित हुई। उन्हें साहित्य के एक नये युग का प्रणेता माना जाता है— प्रसाद युग।

उनकी रचनाएं सन् 1906 से प्रकाश में आने लगीं, यद्यपि किशोरावस्था से ही वे काव्य-साधना करने लगे थे। तब से लेकर 1937 तक उनकी साहित्य साधना अनवरत रूप से चलती रही।

कामायनी (1935) :

इस महाकाव्य में भारतीय जीवन परंपरा के आदि पुरुष मनु द्वारा सृष्टि के विकास और उसके नियमन की कथा वर्णित है, साथ ही मानव-हृदय की चिरंतन मनोवृत्तियों का विश्लेषण भी है।

इसका कथानक महाप्रलय (लगभग 3300 ई. पू.) की घटना से आरंभ होता है। महा-प्रलय से पहले की देव सृष्टि का विनाश हो जाता है और मनुष्य जीवधारी के नाम पर मनु-श्रद्धा और कुछ बिखरे-बिखरे जीवन, प्रलय के बाद शेष रह जाते हैं। कर्माहुति के बल पर नई सभ्यता से मनु नई सृष्टि का प्रवर्तन करते हैं। कर्माहुति के बल पर नई सभ्यता को जन्म देते हैं। तब सारस्वत प्रदेश की इड़ा से उनकी भेंट होती है। उसके साथ रहते हुए वे भौतिक सभ्यता का विकास करते हैं और अंततः इड़ा पर अधिकार करना चाहते हैं। इस संघर्ष में प्रजा द्वारा युद्ध छेड़ा जाता है और मनु प्रताड़ित तथा घायल हो जाते हैं। अन्ततः श्रद्धा से उनकी पुनः भेंट होती है और वे प्रेम, भक्ति और आनंद में ही जीवन का सत्य प्राप्त करते हैं।

यह कथानक मनु-श्रद्धा-इड़ा को केंन्द्र में रखकर गूँथा गया है और इसमें दोहरा अर्थ है। मन की प्रेरणा श्रद्धा भी है और इड़ा (बुद्धि) भी है। मनु बुद्धि के वश होकर कर्म में प्रवृत्त होता है किंतु उस पर अधिकार नहीं कर सकता। श्रद्धा और प्रेम में ही उसे शांति मिलती है। यह रूपक इस महाकाव्य में उभारा गया है।

महाकाव्य के नायक मनु हैं जो अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ के उद्देश्य के लिए प्रयत्नशील हैं। श्रद्धा नायिका है जिसमें नायिकोचित गुण परिपूर्ण मात्रा में आरंभ से ही विद्यमान हैं। इड़ा का स्वतंत्र व्यक्तित्व भी महत्वपूर्ण है। विविध दृश्यों, चित्रणों और मनोविश्लेषण द्वारा काव्य को एक विलक्षण स्वरूप दिया गया है। काव्य की भाषा तत्सम शब्द प्रधान और लाक्षणिक अर्थ से युक्त है। उसमें मानवतावादी उद्देश्यों की व्यंजना हुई है और अन्ततः श्रद्धा, प्रेम और स्नेह की छाया में मनुष्य-मन की शांति का संदेश दिया गया है।

प्रस्तुत अंश :

महाकाव्य के प्रथम सर्ग— 'चिंता' से लिया गया है। इसमें जल प्रलय के बाद मनु की एकाकी दशा का विश्लेषण हुआ है। प्रकारान्तर से जल प्रलय के बाद धीरे-धीरे उभरती पृथ्वी, वृक्ष, वनस्पति आदि का चित्रण और देव सृष्टि के विलीन हुए वैभव की याद में विषण्ण मन मनु की मनोदशा का इसमें चित्रण है।

मनु की चिन्ता

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छांह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता — कहो उसे जड़ या चेतन।

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसी के हृदय-समान,
नीरवता-सी शिला-चरण से टकराता फिरता पवमान।
तरुण तपस्वी-सा वह बैठा साधन करता सुर-श्मशान,
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का होता था सकरुण अवसान।

उसी तपस्वी-से लंबे थे देवदारु दो-चार खड़े,
हुए हिम-धवल, जैसे पत्थर बन कर ठिठुरे रहे अड़े।
अवयव की दृढ़ मांस-पेशियां, ऊर्जस्वित था वीर्य्य अपार,
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।

चिंता-कातर वदन हो रहा पौरुष जिसमें ओत-प्रोत,
उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत।

बंधी महावट से नौका थी सूखे में अब पड़ी रही,
उतर चला था वह जल-प्लावन, और निकलने लगी मही।

निकल रही थी मर्म वेदना करुणा - विकल कहानी-सी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती-सी पहचानी-सी।

"ओ चिंता की पहली रेखा, अरी विश्व-वन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप-सी मतवाली।
हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खललेखा।
हरी-भरी-सी दौड़-धूप, ओ जल-माया की चल-रेखा।

इस ग्रह कक्षा की हलचल-री तरल गरल की लघु-लहरी,
जरा अमर-जीवन की, और न कुछ सुनने वाली, बहरी।
अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी-अरी आधि, मधुमय अभिशाप।
हृदय-गगन में धूमकेतु-सी, पुण्य-सृष्टि में सुन्दर पाप।

मनन करावेगी तू कितना ? उस निश्चिंत जाति का जीव-
अमर मरेगा क्या ? तू कितनी गहरी डाल रही है नींव।
आह ! घिरेगी हृदय-लहलहे-खेतों पर करका-घन-सी,
छिपी रहेगी अंतरतम में सबके तू निगूढ़ धन-सी।

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता तेरे हैं कितने नाम।
अरी पाप है तू, जा, चल जा यहां नहीं कुछ तेरा काम।
विस्मृति आ, अवसाद घेर ले, नीरवते ! बस चुप कर दे,
चेतनता चल जा, जड़ता से आज शून्य मेरा भर दे।"

"चिंता करता हूं मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनंत में बनती जाती रेखायें दुख की।
आह सर्ग के अग्रदूत ! तुम असफल हुए, विलीन हुए,
भक्षक या रक्षक जो समझो, केवल अपने मीन हुए।

अरी आँधियो ! ओ बिजली की दिवा-रात्रि तेरा नर्तन
उसी वासना की उपासना, वह तेरा प्रत्यावर्त्तन।

मणि-दीपों के अंधकारमय अरे निराशा पूर्ण भविष्य।
देव-दंभ के महामेध में सब कुछ ही बन गया हविष्य।

अरे अमरता के चमकीले पुतले ! तेरे वे जयनाद —
कांप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बन कर मानो दीन विषाद।
प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में,
भोले थे, हां तिरते केवल सब विलासिता के नद में।

वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार —
उमड़ रहा था देव-सुखों पर दुःख-जलधि का नाद अपार।"

"वह उन्मत्त विलास हुआ क्या ? स्वप्न रहा या छलना थी
देवसृष्टि की सुख-विभावरी ताराओं की कलना थी।
चलते थे सुरभि अंचल से जीवन के मधुमय निश्वास,
कोलाहल में मुखरित होता देव जाति का सुख-निश्वास.

सुख, केवल सुख का वह संग्रह , केंद्रीभूत हुआ इतना,
छायापथ में नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।
सब कुछ थे स्वायत्त, विश्व के बल, वैभव, आनंद अपार,
उद्वेलित लहरों-सा होता उस समृद्धि का सुख-संचार।

कीर्ति, दीप्ति, शोभा थी नचती अरुण-किरण-सी चारों ओर,
सप्तसिंधु के तरल कणों में, द्रुम-दल में, आनंद-विभोर।
शक्ति रही हां शक्ति-प्रकृति थी पद-तल में विनम्र विश्रांत,
कंपती धरणी उन चरणों से होकर प्रतिदिन ही आक्रांत।

स्वयं देव थे हम सब, तो फिर क्यों न विशृंखल होती सृष्टि ?
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।
गया, सभी कुछ गया, मधुरता सुर-बालाओं का शृंगार,
उषा ज्योत्स्ना-सा यौवन-स्मित मधुप-सदृश निश्चिंत विहार।

भरी वासना-सरिता का वह कैसा था मदमत्त प्रवाह,
प्रलय-जलधि में संगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।"

"चिर-किशोर-वय, नित्य विलासी-सुरभित जिससे रहा दिगंत
आज तिरोहित हुआ कहां वह मधु से पूर्ण अनंत बसंत ?
कुसुमित कुंजों में वे पुलकित प्रेमालिंगन हुए विलीन,
मौन हुई है मूर्च्छित तानें और न सुन पड़ती अब बीन।

अब न कपोलों पर छाया-सी पड़ती मुख की सुरभित भाप,
भुज-मूलों में शिथिल वसन की व्यस्त न होती है अब माप।
कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे, हिलते थे छाती पर हार,
मुखरित था कलरव, गीतों में स्वर लय का होता अभिसार।

सौरभ से दिगंत पूरित था, अंतरिक्ष आलोक-अधीर,
सबमें एक अचेतन गति थी, जिससे पिछड़ा रहे समीर।
वह अनंग-पीड़ा-अनुभव-सा अंग-भंगियों का नर्त्तन,
मधुकर के मरंद-उत्सव-सा मदिर भाव से आवर्त्तन।

सुरा सुरभिमय बदन अरुण वे नयन भरे आलस अनुराग,
कल कपोल था जहां बिछलता कल्पवृक्ष का पीत पराग।
विकल वासना के प्रतिनिधि वे सब मुरझाये चले गये,
आह ! जले अपनी ज्वाला से फिर वे जल में गले, गये।"

"अरी उपेक्षा-भरी अमरते ! री अतृप्ति ! निर्बाध विलास !
द्विधा-रहित अपलक नयनों की भूख-भरी दर्शन की प्यास।
बिछुड़े तेरे सब आलिंगन, पुलक-स्पर्श का पता नहीं,
मधुमय चुंबन कातरतायें, आज न मुख को सता रहीं।

रत्न-सौध के वातायन, जिसमें आता मधु-मदिर समीर,
टकराती होगीअब उनमें तिमिंगलों की भीड़ अधीर।
देवकामिनी के नयनों से जहां नील नलिनों की सृष्टि —
होती थी, अब वहां हो रही प्रलयकारिणी भीषण वृष्टि।

वे अम्लान-कुसुम-सुरभित-मणि-रचित मनोहर मालायें,
बनी शृंखला, जकड़ी जिनमें विलासिनी सुर-बालायें।

देव-यजन के पशु यज्ञों की वह पूर्णाहुति की ज्वाला,
जलनिधि में बन जलती कैसी आज लहरियों की माला।"

"उनको देख कौन रोया यों अंतरिक्ष में बैठ अधीर।
व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय यह प्रालेय हलाहल नीर।
हाहाकार हुआ क्रंदनमय कठिन कुलिश होते थे चूर,
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव बार-बार होता था क्रूर।

दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज-तट के।
सघन गगन में भीम प्रकंपन, झंझा के चलते झटके।
अंधकार में मलिन मित्र की धुँधली आभा लीन हुई,
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा स्तर-स्तर जमती पीन हुई।

पंचभूत का भैरव मिश्रण, शंपाओं के शकल-निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।
बार-बार उस भीषण रव से कंपती धरती देख विशेष,
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष।

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों-सी,
चली आ रही फेन उगलती फन फैलाये व्यालों-सी।
धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वाला-मुखियों के निश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास।

सबल तरंगाघातों से उस क्रुद्ध सिंधु के, विचलित-सी -
व्यस्त महाकच्छप-सी धरणी ऊभ-चूभ थी विकलित-सी।
बढ़ने लगा विलास-वेग-सा वह अति भैरव जल-संघात,
तरल-तिमिर से प्रलय-पवन का होता आलिंगन, प्रतिघात।

वेला क्षण-क्षण निकट आ रही क्षितिज क्षीण, फिर लीन हुआ,
उदधि डुबाकर अखिल धरा को बस मर्यादा-हीन हुआ।
करका क्रंदन करती गिरती और कुचलना था सब का,
पंचभूत का यह तांडवमय नृत्य हो रहा था कब का।"

"एक नाव थी, और न उसमें डांडे लगते, या पतवार,
तरल तरंगों में उठ-गिर कर बहती पगली बारंबार।
लगते प्रबल थपेड़े, धुंधले तट का था कुछ पता नहीं,
कातरता से भरी निराशा देख नियति पथ बनी वहीं।

लहरें व्योम चूमती उठतीं, चपलायें असंख्य नचतीं,
गरल जलद की खड़ी झड़ी में बूंदें निज संसृति रचतीं।
चपलायें उस जलधि-विश्व में स्वयं चमत्कृत होती थीं,
ज्यों विराट बाड़व-ज्वालायें खंड-खंड हो रोती थीं।

जलनिधि के तलवासी जलचर विकल निकलते-उतराते,
हुआ विलोड़ित गृह, तब प्राणी कौन। कहां। कब। सुख पाते ?
घनीभूत हो उठे पवन, फिर श्वासों की गति होती रुद्ध,
और चेतना थी बिलखाती, दृष्टि विफल होती थी क्रुद्ध।

उस विराट आलोड़न में ग्रह, तारा बुद-बुद से लगते,
प्रखर प्रलय-पावस में जगमग, ज्योतिरिंगणों-से जगते।
प्रहर दिवस कितने बीते, अब इसको कौन बता सकता,
इनके सूचक उपकरणों का चिह्न न कोई पा सकता।

काला शासन-चक्र मृत्यु का कब तक चला, न स्मरण रहा,
महा मत्स्य का एक चपेटा दीन पोत का मरण रहा।
किन्तु, उसीने ला टकराया इस उत्तर गिरि के शिर से,
देव-सृष्टि का ध्वंस अचानक श्वास लगा लेने फिर से।

आज अमरता का जीवित हूं मैं वह भीषण जर्जर दंभ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम-पात्र मय-सा विष्कंभ।"
"और जीवन की मरु-मरीचिका, कायरता के अलस विषाद।
अरे पुरातन अमृत ! अगतिमय मोहमुग्ध जर्जर अवसाद !
मौन ! नाश ! विध्वंस ! अंधेरा ! शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते। तुझको यहां कहां अब ठांव।

मृत्यु,अरी चिर-निद्रे। तेरा अंक हिमानी-सा शीतल,
तू अनंत में लहर बनाती काल-जलधि की-सी हलचल।
महानृत्य का विषम सम अरी अखिल स्पंदनों की तू माप,
तेरी ही विभूति बनती है सृष्टि सदा होकर अभिशाप।

अधंकार के अट्टहास-सी मुखरित सतत चिरंतन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू यह सुन्दर रहस्य है नित्य।
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घन-माला में,
सौदामिनी-संधि-सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।"

पवन पी रहा था शब्दों को निर्जनता की उखड़ी सांस,
टकराती थी, दीन प्रतिध्वनि बनी हिम-शिलाओं के पास।
धू-धू करता नाच रहा था अनस्तित्व का तांडव नृत्य,
आकर्षण-विहीन विद्युत्कण बने भारवाही थे भृत्य।

मृत्यु सदृश शीतल निराश ही आलिंगन पाती थी दृष्टि,
परम व्योम से भौतिक कण-सी घने कुहासों की थी वृष्टि।
वाष्प बना उड़ता जाता था या वह भीषण जल-संघात,
सौरचक्र में आवर्त्तन था प्रलय निशा का होता प्रात।

शब्दार्थ आदि

उत्तुंग	=	बहुत ऊँचा
भीगे नयनों से	=	दुख, पश्चाताप और हताशा से चारों ओर की निर्जनता और रव शून्यता के बीच
पवमान	=	वायु, हवा
सुर-श्मशान	=	देव सभ्यता का विनाश स्थल
ऊर्जस्वित	=	ऊर्जा से भरपूर, ओजपूर्ण
वीर्य्य	=	शक्ति, पुरुषार्थ
स्फीत शिराएं	=	उभरी हुई नसें

वदन	=	मुख
महावट	=	बड़े बरगद के पेड़ से
व्याली	=	सर्पिणी
खल लेखा	=	वक्र रेखा, दुर्भाग्य की सूचक
जरा	=	वृद्धता, वृद्ध अवस्था
आधि	=	मानसिक दुख
करका	=	ओले
मीन	=	सबसे अंतिम, मीन राशि जो कि गणना में अंतिम होती है
सर्ग	=	सृष्टि, निर्माण
प्रत्यावर्तन	=	उल्टी गति, वापसी
मणि दीप	=	भौतिक विकास
महामेध	=	महायज्ञ
हविष्य	=	हवन सामग्री, आहुति
अमरता के पुतले	=	देवगण
पारावार	=	सागर
कलना	=	चमक, अल्पजीवी चमक
छायापथ	=	आकाश, पथ
सप्तसिंधु	=	सात नदियों का प्रदेश
विशृंखल	=	शृंखला विहीन, बिखरी हुई
तिरोहित	=	विलीन, लुप्त
मरंद	=	मकरंद, पराग
तिमिंगल	=	समुद्री जंतु, बड़ी मछली
प्रालेय	=	प्रलयंकारी
दिग्दाह	=	दिशा-दिशा के ताप और दुःख
मित्र	=	सूर्य
वरुण	=	जल देवता
पीन	=	पुष्ट, घनी

पंचभूत	=	पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, पवन
भैरव मिश्रण	=	विनाशकारी योग
शंपा	=	बिजली, चपला, अशनि
शकल	=	खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े
उल्का	=	मशाल
महाकच्छप-सी धरणी	=	प्रलय के समय चौतरफा जल से घिरी पृथ्वी एक बड़े कछुए के समान दिखाई देती थी
ऊभ-चूभ	=	डूबना-उतराना
विष्कंभ	=	नाटक का एक प्रकार का सूच्य अंक जिसमें घटित या भावी कथा की सूचना पात्रों के माध्यम से दी जाती है।
सौदामिनी	=	बिजली, चपला।

प्रश्न तथा अभ्यास

1. "वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार—
उमड़ रहा था देव-सुखों पर, दुःख जलधि का नाद अपार"
–इन पंक्तियों में किन का वर्णन अभीष्ट है—
(क) देवगणों का (ख) मानव जन का
(ग) वनवासी जनों का (घ) राक्षस गणों का
(ङ) अप्सरा जनों का ( )

2. "विकल वासना के प्रतिनिधि वे, सब मुरझाए चले गए।
आह ! जले अपनी ज्वाला से, फिर वे जल में गले गए ॥"
–इनमें "आह !" शब्द से किस भाव की व्यंजना हो रही है ?
(क) आश्चर्य (ख) अफ़सोस (ग) करुणा
(घ) दुःख (ङ) समवेदना ( )

3. "बार-बार उस भीषण रव से, कंपती धरती देख विशेष।
मानो नील व्योम उतरा हो, आलिंगन के हेतु अशेष"
– इन पंक्तियों में किस अलंकार का प्रयोग हुआ है ?

(क) उपमा (ख) रूपक

(ग) उत्प्रेक्षा (घ) अन्योक्ति

(ङ) श्लेष (

4. इस पाठ में "चिंता" के कई नाम गिनाए गए हैं। इनमें से कौन सा असंगत है ?

(क) बुद्धि (ख) विवेक

(ग) मनीषा (घ) मति

(ङ) आशा (

5. देव सभ्यता के विनाश के क्या-क्या कारण कवि ने बताए हैं ?

6. निम्नलिखित में कवि के काव्य-कौशल (भाव सृष्टि, अलंकार, उपयुक्त शब्द चयन) की व्याख्या कीजिए—

(1) "चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाए व्यालों-सी।"

(2) "हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल-लेखा।"

(3) "देव-दंभ के महामेध में, सब कुछ ही बन गया हविष्य।"

(4) "आह ! जले अपनी ज्वाला से, फिर वे जल में गले, गए।"

7. देव-सभ्यता की रमणीयता का जो चित्रण कवि ने किया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए

8. देव-सभ्यता की रमणीयता, भव्यता और वैभव सम्पन्नता का जो पर्यवसान हुआ, उसे तुलनात्मक शैली में लिखिए।

9. "प्रिय प्रवास" में तूफान का जो भयंकर वर्णन हुआ है और "कामायनी" में जो प्रलय का वर्णन हुआ है — उनमें समानताएं और असमानताएं बताइए।

10. "पंचभूत का भैरव मिश्रण, शम्पाओं के शकल-निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियां, खोज रहीं, ज्यों खोया प्रात॥"

– इन पंक्तियों में —

(1) ह्रस्व-दीर्घ मात्राएँ लगाइए।

(2) देखिए कि विराम (,) के पहले और बाद में कितनी-कितनी मात्राओं का प्रयोग हुआ है ?

(3) प्रति पंक्ति कुल मात्राएं कितनी आती हैं ?

(4) हर पंक्ति के अंतिम दो वर्णों में मात्रा का क्रम क्या है ?

(5) मिलान कीजिए कि यदि —

(क) प्रति पंक्ति 31 मात्रा हैं

(ख) अंतिम दो वर्ण S । के क्रम में हैं और

(ग) 16-15 पर यदि (,) है तो यह

(घ) वीर छंद है जो भय, विस्मय जैसे भावों की व्यंजना के लिए चुना जाता है।

(6) ऐसे ही अन्य दो-चार चरण चुनिए और मात्राओं की गणना करके उक्त तथ्य की परीक्षा कीजिए। ध्यान रखिए कि यदि बीच में कहीं 16-14 के क्रम से 30 मात्राएं आएं और चरणांत में S1 न निभे तो छंद बदल जाएगा। वह ताटंक छंद कहलाएगा। उसका प्रयोग भी इस अंश में है।

11. "कामायनी" के इस अंश के आधार पर निम्नांकित बिन्दुओं पर प्रसाद की काव्यगत विशेषताएं बताइए—

(1) प्रकृति चित्रण

(2) भाषा की विशेषताएँ (शब्द सौंदर्य, भावनानुकूल प्रयोग)

(3) मानवीय संवेदनाओं (भावनाओं) का चित्रण

(4) शैली की विशेषताएं (अलंकारों का प्रयोग, छंद का चयन, विराम चिन्हों का प्रयोग)

□□□

प्रतिज्ञा

☆ **भा**रत मेरा देश है । समस्त भारतीय मेरे भाई-बहिन हैं ।

☆ **मैं** अपने देश से प्रेम करता हूँ तथा मुझे इसकी विपुल एवं विविध थातियों पर गर्व है । मैं इसके योग्य होने के लिए सदैव प्रयत्न करता रहूँगा ।

☆ **मैं** अपने माता-पिता, अध्यापक एवं समस्त बड़ों का सम्मान करूँगा तथा प्रत्येक व्यक्ति के साथ शिष्टता से व्यवहार करूँगा ।

☆ **मैं** अपने देश एवं देशवासियों के प्रति निष्ठा बनाए रखने की प्रतिज्ञा करता हूँ । मेरी प्रसन्नता केवल उनके कल्याण एवं उनकी समृद्धि में ही है ।

मूल्य- रु . 4.30

लेवी- रु . 0.15